लकत्ता से पीकिंग

लेखक
भगवतशरण उपाध्याय

प्रकाशक
राजपाल एण्ड सन्ज
कश्मीरी गेट,
दिल्ली-६

दो शब्द

सन् १९५२ में मैं भारतीय प्रतिनिधि की हैसियत से शान्ति-सम्मेलन में शामिल होने चीन गया था। वहाँ से मैंने अपने मित्रों-स्वजनों को कुछ पत्र लिखे थे। पत्र पाने वाले सभी प्रकार के व्यक्ति थे—अपने परिवार के लोग, मित्र, सम्बन्धी सरकारी अफसर, कवि, लेखक, उपन्यासकार। कुछ पत्र डाक में डाले गये, कुछ लिखकर पास रख लिये गये। यह 'कलकत्ता से पीकिंग' उन्हीं पत्रों का संग्रह है, उन सभी पत्रों का जो उस काल लिखे गये।

जो देखा वह लिखा, देखा हुआ जितना लिखा जा सकता है उतना। इन पत्रों से पाठकों की चीन-सम्बन्धी कुछ जानकारी हुई तो लेखन सफल मानूंगा। पत्रों की पाण्डुलिपि श्री जयदत्त पन्त (अमृत पत्रिका) और मेरे भूतपूर्व सेक्रेटरी श्री राजेश-शरण (चीन में हिन्दी के लेक्चरर) ने प्रस्तुत की, इससे उनका आभार मानता हूँ।

४-ए थार्नहिल रोड
इलाहाबाद।

भगवतशरण उपाध्याय

कौलून,
हाँगकाँग,
२६-६-५२

प्रिय अमनी,

दस्तूर के मुताबिक दौड़-धूप। पर आखिर थाइलैंड का 'वीजा' मिल ही गया और आज तुम्हें तीन हजार मील दूर हाँगकाँग से लिख रहा हूँ।

पिछली रात मैंने कलकत्ते में बिताई। रात अन्धेरी थी, बड़ी मनहूस-सी। पैन-अमेरिकन एयरवेज के दफ़्तर से बराबर फोन आते रहे जिससे नींद में ख़लल पड़ती रही। ग्यारह बजे ही जहाज दिल्ली से पहुँचने वाला था। वह पहले एक घंटा लेट हुआ, फिर दो घंटा, फिर तीन। मित्रवर सेकसरियाजी के यहां से उनकी गाड़ी में पहले पैन-अमेरिकन एयरवेज के दफ्तर गया फिर वहां से उनकी बस में दमदम। बस सूनी सड़कों पर तेज भागी। नगर चुपचाप सो रहा था।

पर दमदम अभी तक जहाज की प्रतीक्षा में था। असबाब के दफ़्तर से होकर, झल्ला देने वाले कस्टम के अफसरों से तू-तू, मैं-मैं की और तब डाक्टर को स्वास्थ्य का सार्टीफिकेट दिखाकर हम पैसिन्जरों के प्रतीक्षा-लय में, ठीक जहाज उतरने के मैदान के सामने जा बैठे। घंटे पर घण्टा कब से बीत रहा था, बीत चला।

गर्मी बड़ी थी, बड़ी उमस। हवा की जैसे सांस तक नहीं चलती थी; ललाट पर जो पसीना आया तो वहीं अटका रहा। देर के मारे गर्मी और भी बढ़ गई-सी लगती थी। माथा जैसे घूम रहा था। रात की मनहूसियत गर्मी को और बढ़ाए दे रही थी। आसमान में कहीं चांद ज़रूर था, क्योंकि उसकी हल्की पीली रोशनी छिटक रही थी, यद्यपि

थी वह एक दर्जन मोमबत्तियों की रोशनी से भी कम। कुछ-एक तारे धीरे-धीरे झिलमिला रहे थे। चांदनी के बावजूद आकाश में अंधेरा छाया हुआ था, यद्यपि साथ ही अनेक बिजली के बल्ब भी अंधेरे से निरन्तर लड़ रहे थे।

पांच बजे के करीब जहाज के पहुंचने का सिगनल हुआ और शक्तिमान् पैन-अमरीकी इंजन की कानों को बहरा कर देने वाली आवाज़ भी सुनाई पड़ने लगी। दिल्ली से आने वाले प्रतिनिधियों में डाक्टर सैफुद्दीन किचलू, डाक्टर अब्दुल अलीम और पार्लमेंट के सदस्य श्री ए० के० गोपालन थे। इधर मेरे साथ कई बंगाल के डेलिगेट थे, जिनमें कुछ महिलाएँ भी थीं। जहाज़ में हम कुल प्रतिनिधि १९ थे।

जहाज़ कुशादा था। बाहर से भीतर कुछ अच्छा ही जान पड़ा। यद्यपि गर्मी वहां भी थी, पर वहां की गर्मी कुछ ऐसी बेजा भी नहीं लगी। बदस्तूर गड़गड़ाहट, पेटी लगाने का सिगनल, सुन्दर होस्टेसों की फुस-फुसाहट, एक धक्का, एक झोंका और एक प्रकार की पेट में सनसनाहट। जहाज़ जो शून्य में कूद चुका था, अन्तरिक्ष में उड़ा जा रहा था। प्लास्टिक मढ़ी खिड़की से जो बाहर देखा तो उस महानगर की बुर्जियां, मन्दिर, खम्भों की कतारें, महल-कंगूरे दृष्टिपथ में विलीन होते जा रहे थे। धीरे-धीरे वे दूरी में खो गए।

जहाज़ जब उड़ा तब अभी छः नहीं बजे थे। आसमान के बहके बादलों को चीरता, नगाड़े का-सा गरजता हमारा जहाज पूरब की ओर दैत्यशक्ति से भागा। प्राची रंगों के समुद्र में डूबा हुआ था। एक लम्बी पट्टी, पानी की हिलती हुई विशाल पत्ती की तरह, क्षितिज को जैसे घेरे हुए थी। उसके नीचे आकाश अनेक रंगों से जगमगा रहा था। सारे रंग जैसे एक साथ पिघलकर ऊपरी आसमान को पिघले रांगे-सा बना रहे थे। रंगों का वह सोपान-मार्ग फिर धीरे-धीरे ऊपर उठ चला। एक सोने का धागा चमका जो ऊपर उठा, फैला। सहसा एक लाल रेखा खिंच गई और फटती हुई पौ से जैसे रक्त की बाढ़ ढुलक गई—सूरज जन्मा।

पूरब में आग लग गई थी। गोल अंगारा दिशाओं में अग्नि के तीर मार रहा था। प्रकाश जब फैलने लगता है, फिर रोका नहीं जा सकता। अपने अनन्त करों से वह अंधकार मे पैठ उसकी गहराइयों को आलोकित कर देता है। प्रकाश का यह पुञ्ज क्या हमारे देश का स्पर्श न करेगा?—मेरे भीतर आवाज़ उठी—और उस गलीज़ को जला न देगा जो उसके सुन्दर चेहरे को बदसूरत बनाता रहा है?

विचारों को पंख लग गए। मेरे अंतर को वे ले उड़े। जहाज की ही गति की भांति मेरा मन भी भौतिक सीमाओं को लांघ चला। नीचे युद्ध-विगलित संसार—संयुक्त-राष्ट्र-संघ का मजाक, कोरिया की कुचली मानवता, वियतनाम का मरणान्तक संघर्ष, मलाया में साम्राज्यवाद की सडी जड़ों को फिर से रोपने की कोशिश, केनिया में विकराल अत्याचार, दक्षिण अफ्रीका में जाति-विरोधी कानूनों का घिनौना प्रयोग, त्यूनीशिया का अदम्य विद्रोह, ईरान में जानबुल का बुद्धूपन और पार्तोरीका में अंकिल सैम की मूर्खता, एशिया और दक्षिण अमेरिका के नम्बर चार योजना के फौलादी शिकंजे से छूटने से भगीरथ प्रयत्न और अब यह अभी हाल का 'कम्यूनिटी प्रोजेक्ट' (गांव सुधार) जो अपने देश की कुआंरी जमीन पर बंझा घास की भांति छाये जा रहा है।

अन्त में मेरे विचार आगामी पीकिंग शांति-सम्मेलन पर जा लगे। अनेक सरकारों ने—कुछ ने अपनी रुचि से, कुछ ने एक प्रबल शक्ति के दबाव के कारण—अपनी जनता के उन चुने हुए प्रतिनिधियों को पासपोर्ट देने से इन्कार कर दिया था जो शांति-सम्मेलन में शामिल होने वाले थे। स्वयं हमारी सरकार ने काफी बाद में कुछ नरमी दिखाई और उनके साथ बेहतर सलूक किया, पर केवल बेहतर, उन प्रगतिगामी सरकारों से। आखिर शांति से यह मुँह छिपाई क्यों? शांति क्या पाप है? दण्ड-नीय अपराध है? इससे डर क्यों? क्या यह इन्सानियत का मूलभूत प्राथमिक तत्व नहीं, वह आधारभूत आदिम स्थिति जिसमें जीवन अंकु-रित होता और बढ़ता है? क्या शांति वह बुनियादी आवश्यकता नहीं

जो इन्सान की महान् विरासत की रक्षा और प्रगति के लिए अनिवार्य है !

उससे शर्म क्यों ? क्या शांति इस या उस देश की है और उसके अनेक रूप है ? क्या शांति आंशिक है, अखण्ड नहीं ? फिर उसकी रक्षा परिभाषाओं के साथ क्यों की जाय ? युद्ध जीवन-शक्ति का शत्रु है, यही कहकर युद्ध का प्रतिकार और शांति की उपासना क्यों न हो ? हां, हमारी सरकार ने भी जैसा अभी कह चुका हूँ, 'केवल औरों से बेहतर' सलूक किया। मानसपथ में घटनाओं की बाढ़-सी आ गई—स्वाधीनता के लिए हमारा संघर्ष, उस दिशा में हमारे निरन्तर बलिदान, अत्याचारों का मरणान्तक विरोध, साहसपूर्ण नेतृत्व, गांधी और नेहरू—एक शांति और अहिंसा का पुजारी, दूसरा अनुपम निर्भीकता का प्रतीक, सहज गतिशीलता की मूर्ति।

गतिशीलता···नेहरू···मेरे विचार बस वहीं थम गए। नेहरू जगत् के देशप्रेमियों का प्यारा, भारतीय मानवता की इस सरकार में एकमात्र आशा और प्रकाश। नेहरू, जो भेरीनाद सुनकर युद्ध से दूर नहीं रखा जा सकता है, घमासान के बीच जिसका स्थान है। नेहरू, जिसकी उत्कट आशावादिता गिरे हुओं में सांस फूंकती है, जिसका विश्वास बुझे दीपक की लौ जला देने की शक्ति रखता है, जिसका नाम गतिशीलता का पर्याय है।

गतिशीलता !—आशा है यह शब्द तुम्हें विभ्रम न कर देगा। निर्दोष है यह शब्द, जीवन का पर्याय। मृत्यु की प्रतिकूल शक्ति है यह, प्रगति का परिचायक। अन्तर्मुखी वृत्ति का विरोधी है इस शब्द का अन्तरंग, जो प्रणाली का गलीज़ साफ कर प्रवाह अविरल कर देता है। परन्तु स्वयं गतिशीलता को जीवित रखने के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने आदिम उद्गम अर्थात् जनसत्ताक प्रेरणाओं से अपना शाश्वत आहार और पेय ग्रहण करती रहे। चित्त की क्रान्तिकारी भावना का अटूट रूप इसकी रक्षा के लिए कायम रहना आवश्यक है। परन्तु स्वयं

चित्त की क्रान्तिकारी भावना निष्क्रिय हो जाती है यदि उसका सम्पर्क अपने उस उद्गम से टूट जाय महान् नेहरू के बावजूद सरकार का जनसत्ताक सम्पर्क उस उद्गम से टूट गया जो उसकी गतिशीलता का आदि बिन्दु होता और उसे संतत सक्रिय रखता। गतिशील पिण्डों का स्वभाव कैसा होता है ? जब गतिशील व्यक्तित्व अपना संबंध गतिहीन पिण्ड से जोड़ता है तब दो में से एक परिणाम होकर ही रहता है। या तो वह उस गतिहीन पिण्ड में क्रान्ति उपस्थित कर उसे बदल देता है या यदि वह पिण्ड सर्वथा भारी हुआ, तब धीरे-धीरे उसके साथ समझौता करता वह स्वयं विनष्ट हो जाता है। गतिहीन सरकार भ्रष्टाचार, दीर्घसूत्रता और अतिव्ययता का केन्द्र हो जाती है। ये दुर्गुण यदि तत्काल नष्ट नहीं कर दिए जाते तो राजरोग की भांति बढ़कर शासन को ही लील जाते हैं। जो लोग महान् नेता के इर्द-गिर्द मंडराते रहे थे, स्वाधीनता के संघर्षकाल से ही उनकी आँखे दूर के लाभ पर टिकी थीं। वस्तुतः उन्होंने अपने प्रयत्नों की बाजी लगाई थी और अब पौ-बारह होने पर उन्होंने अपना लाभ हथियाना चाहा। उन्होंने पहले याचना की, फिर मांगा और अन्त में झपटकर अपने विजयी कप्तान के हाथ से लाभ के पद छीन लिए। और धीरे-धीरे शासन के शरीर पर वे नासूर की तरह फैल गए। परिणाम हुआ विधिवत अराजकता, यान्त्रिक अराजकता। पण्डित नेहरू का कांग्रेस की बागडोर हाथ में ले लेना उस नैतिक ह्रास को अधोगः ले चला, क्योंकि एकमात्र संस्था जिसे उनके विरोध का आंशिक अधिकार प्राप्त था और जो किसी हद तक शासन के कृत्यों की आलोचना कर सकती थी, उस नेतृत्व से शासन और आलोचक पार्टी का नेतृत्व समान हो जाने से, निरर्थक हो गई, सर्वथा निष्क्रिय। फिर भी नेता की आत्मा जागती थी क्योंकि उन असंख्य अनाचारों पर अक्सर वह झल्ला उठता था जो उसके शासन की चूलें बड़ी तेजी से ढीली कर चले थे। अन्य नेता इसी बीच प्रौढ़ हो गए, मंज गए। आज के पार्लमेन्टरी शासन का एक अपना राज है। वह राजनीतिज्ञ को मांज देती है, पका देती है, उसे स्टेट्समैन बना देती

है। नौकरशाही के विधि-विधानों से अकड़ा वह मंजना-पकना प्रौढ़ता का परिचायक मानने लगता है। उस स्थिति की यही विडम्बना है, गूढ़ व्यंग्य। तेली के बैल की नाई अब वह चक्करदार राह में घूमता है और उस घूमने को वह प्रगति मानता है। शक्ति और प्रगति में भेद वह नहीं समझ पाता। वह अपना दृष्टिकोण सर्वथा शुद्ध मानता है, केवल उसी का वह कायल है क्योंकि वह अपने को आप से पृथक् कर नहीं देख पाता। आलोचना उसे असह्य हो उठती है। आत्मालोचना से वह घृणा करता है।

उस सरकार में बस एक ही तत्व है–पंडित नेहरू पण्डितजी शांति के प्रेमी हैं। उनकी वैदेशिक नीति, जहां तक शान्ति का प्रश्न है नितान्त स्पष्ट वह जंगबाजों के दुश्मन हैं। संसार में शायद आज दूसरा व्यक्ति नहीं है। जिसने शान्ति की रक्षा के लिए इतने प्रयत्न किये हों जितने प० नेहरू ने। स्तालिन और एचेसन को लिखे उनके पत्र (जिनमें से एक ने उसका स्वागत किया था दूसरे ने अनादर), सैफ्रान्सिस्को की साम्राज्यवादी संधिपत्र पर हस्ताक्षर करने से इकार, युद्ध को अवैधानिक करार देने के लिए पाच शक्तियों की शांति संधि के लिए उनका प्रयास, सभी उस दिशा में पंडित जी की शांति-बुद्धि का परिचय देते है।

प्रिय अमनी, इस प्रकार मेरा मन देर तक विचारों की दुनिया में भटकता रहा। विचार इतना शक्तिमान् होता है कि जब वह भीतर गरजने लगता है तब बाहर की दुनिया के प्रति मनुष्य सर्वथा बहरा हो जाता है। कह नहीं सकता कि कैसे मेरा स्वप्न टूटा। शायद खिड़की से आने वाली गरम धूप के स्पर्श से, शायद पाइलट की घोषणा से, परन्तु निश्चय इंजन की आवाज से नहीं, क्योंकि वह कभी बन्द न हुई थी, सदा मेरे कानों में अपनी निरर्थक गरज गुंजाती रही थी।

तो हम तीन घंटे से अधिक उड़ते रहे थे। बंगाल की खाड़ी पार कर हम बर्मा लांघ चुके थे और अब थाइलैंड के ऊपर उसकी राजधानी बैंकाक के निकट मंडरा रहे थे। जहाज हल्के से उतर पड़ा।

किसी ने हमारे पासपोर्ट इकट्ठे कर लिए और आध घंटे के लिए हम उतर पड़े। स्टेशन के प्रतीक्षालय को जाते हुए हमें एक-दूसरे का परिचय मिला। डाक्टर किचलू से मेरी मुलाकात न थी, न श्री गोपालन से ही, जिन्होंने अभी हाल ही विवाह किया था। डाक्टर अलीम पुराने मित्र है। तुम्हे याद होगा, जयपुर पी. ई. एन. कान्फ्रेन्स के समय अम्बर के किले में एक सज्जन मिले थे जिनको नुकीली दाढी को तुमने 'लेनिनिस्ट बेयर्ड' कहा था। हां डाक्टर आलीम की लेनिनिस्ट दाढ़ी है और लेनिन के अनुकूल ही उनकी विचारधारा है, और लेनिन की ही भांति उनके सिर के बाल भी अब इतने उड़ गए है कि उन्हें एक अंश में गंजा कहा जा सकता है।

प्रतीक्षालय में अनेक प्रकार के पेय रखे थे, शराब, वर्मूथ, कोकाकोला और मेरा अपना सादा पेय, चाय और काफी। मुँह-हाथ धोकर मैंने चाय का एक प्याला पिया। फिर हम जहाज़ में जा बैठे। साढ़े १२ बजे लच जहाज में ही परसा गया। जहाज़ प्रायः १३ हज़ार फ़ीट की ऊँचाई पर तीन सौ मील प्रति घंटे की गति से भागा। हम आदिम जंगलों, वन-मण्डित पर्वत-श्रेणियों, गहरी घाटियों के ऊपर उड़ चले। फिर सहसा उत्तर की ओर घूम हमारा जहाज़ हिन्द-चीन को लांघता हुआ तोकिन की खाड़ी के ऊपर से हैनान द्वीप और चीनी प्रायद्वीप के बीच होता दक्षिण चीनसागर के ऊपर चला।

हम भारतीय समय के अनुसार साढ़े तीन बजे हांगकांग के जहाजी अड्डे कौलून में उतरे। घड़ी की सुइयां करीब चार घण्टे आगे कर देनी पड़ी। बदस्तूर कस्टम्स, यद्यपि अपने देश की तरह अभद्र नहीं, आयात अफ़सर और पुलिस। फिर पत्रकारों का सामना, उनके कैमरों की खिट्-खिट् और अंत में लिमोज़ीन में चढ़कर कौलून होटल।

पत्र, अमनी, डरावना हो चला है, लम्बा। शायद मेरी राजनीति भी। समाप्त करता हूँ।

अभी सूरज डूबा नहीं, बड़ा सुहावना है यहां। कौलून सिर्फ एक ओर

के चारों ओर से भेदभरी पहाड़ियों से घिरा है। उस एक ओर, खाड़ी के पार, घाटो के किनारे और सामने की ढालुवां पहाड़ी भूमि पर इस दक्षिण समुद्र का सुन्दर सन्तरी हॉगकॉग खड़ा नवागत को बुला रहा है। मुझे जाना ही होगा, खाड़ी पार।

तुमको और रवि को स्नेह।

श्रीमती ए. सी देवकी अम्मा,
प्रिंसिपल, बिड़ला कालेज,
पिलानी, राजस्थान।

तुम्हारा,
भगवत

कौलून (हाँगकाँग),
२०-६-१९५२.

प्रियवर

प्रायः नौ घंटे अविराम उड़कर कल शाम कलकत्ते से कौलून पहुँचा। कौलन हॉगकॉंग का हवाई अड्डा है, जहाजों का स्टेशन।

तीन ओर पहाड़ियों से घिरा कौलून अत्यन्त सुन्दर है। एक ओर समुद्र है, उस खाड़ी का भाग जो इसे अंश-मेखला की भांति घेरे हुए है। खुले समुद्र की राह उसी ओर से है। खाड़ी की हल्की धाराएँ उस नगर और सामने के द्वीप हाँगकाँग के बीच टूटती-बिखरती है। पानी का यह कोना जैसे चुपके से पहाड़ों के बीच घुस आया है, हॉगकॉंग में अंग्रेज़ी साम्राज्य की भांति। जल गदला है, नीला-गंदला, इससे कि उस पर दिन-रात असंख्य नावें चलती रहती है, घाट के स्टीमर अविराम खाड़ी लांघते रहते है। खाड़ी के इसी गदले जल ने निःसन्देह हाँगकाँग को द्वीप बनाया है, उसे महान् पत्तन और व्यस्त बन्दर का पद प्रदान किया है।

हॉगकॉंग, कौलून और उससे लगा भूभाग अंग्रेज़ी अमलदारी में है। हॉगकॉंग अन्तर्राष्ट्रीय बन्दर है, माल के यातायात से आज़ाद, कर से मुँह चुरानेवालों का स्वर्ग! खाड़ी के शान्त वातावरण में, उसके दूर के पहाड़ी कोनों-कसरों में माल उतार लेने, उतार देने का बड़ा मौका है। और लोग इन मौकों से लाभ उठाने से चूकते भी नही। इस घटिया किस्म का, पर अत्यन्त लाभकर, व्यापार करने वालों की तादाद हॉगकाँग में खासी है।

हॉगकॉग और कौलून की सम्मिलित जनसंख्या प्रायः पचीस लाख है। आबादी प्रधानतः चीनियों की है। उनके अतिरिक्त वहां अधिकतर सौदागर हैं। फिर चीन से भागे सरमायेदार, तवायफे, आने-जाने और मुस्तकिल तौर से रहने वाले फौज़ी और नौसैनिक। किस प्रकार इंगलैंड ने प्रकृति की इस सुन्दर विभूति और महान् बन्दर पर अधिकार कर लिया, वह कहानी और है। वह तभी तक विदेशी सत्ता का केन्द्र बना रह सकता है, जब तक कि जन-शक्ति-राशि महाकाय चीन चुप है और उधर सरक नहीं आता। या तब तक, जब तक कि यह अंग अपने प्राकृतिक पिण्ड की ओर स्वतः आकृष्ट नहीं हो जाता।

हवाई यात्रा सुखद रही। पर नौ घंटे खुली हवा से अलग, जहाज के भीतर बन्द रहने से जी ऊब गया। खाड़ी के तट पर दौड़ चलने की इच्छा बलवती हो उठी। होटल से तीर की तरह भागा। चौड़ी सड़क पर चल पड़ा। चुपचाप, बिना पथप्रदर्शक के, बगैर नक्शे के। तत्काल उनकी मुझे आवश्यकता भी न थी, क्योंकि हॉगकॉग आँखों के सामने था, पहाड़ी ऊंचाइयों पर बिखरा। उसे और पास से देखने चल पड़ा था, तेज।

सोचा, जब उस पार का महानगर इतना निकट दिख रहा है तब घाट भी दूर नही हो सकता। अनुमान सच निकला। कुछ मिनट की गति, फ़क़त फर्लांग भर, और मैं जा खड़ा हुआ समुद्र के किनारे।

समय सूर्यास्त का था। सैर करने वालों की भीड़ खासी थी। आवारागर्दी का आलम था। भीड़ निरुद्देश्य नज़रों से मुझ अजनबी को झांकती, घूरती पास से निकली जा रही थी। बातों की आवाज़ और पैरों की चाप, लहरों की ध्वनि ,से ऊपर उठ आती थी। दल के दल मर्द तट तक फैले खड़े थे। औरतें उनके बीच कतराती हुई घुसतीं और इठलाती-बलखाती दूसरी ओर निकल जातीं। भिखमंगे रह-रहकर अपने कांपते हुए हाथ बढ़ा देते, जो सदा कांपते ही नहीं थे, और जिनसे जेबों को खासा अंदेशा भी था! घिनौने लालची भिखमंगे, बढ़े और बच्चे, सहसा

मुँह की चेष्टा बिगाड़ ओठों को बिचका देते, गिड़गिड़ाकर हाथ फैला देते। एक लड़के ने, जिसकी पीठ पर एक बच्चा बंधा हुआ था, हाथ फैला दांत निपोरकर मुझसे अंग्रेजी में कहा—'नो पापा, नो मामा' (न बाप है न माँ)। हॉगकॉग के भिखमंगे भयानक हैं। आप झल्ला उठें, लाख झिड़कें, तड़पें, पर वे पिण्ड न छोड़ेंगे, कम्बख्ती के शिकार, इन्सानियत के पाप! सहसा, निमिषमात्र में, सूरज डूब गया। रात की पहली छाया कांपती हुई चराचर के ऊपर से निकल गई—एक श्यामल नीलाभ रेखा वायु के हलके झंकोरे से बोझिल!

पहाड़ी ढाल पर बने खाड़ी पार के मकानों के असंख्य दीप सहसा जल उठे। दीप वहाँ पहले भी थे, शायद सूरज डूबने के पहले भी, और जल भी रहे थे, केवल ग्रहपति के हतप्रभ होते ही उनकी पीली किरणों ने उन असंख्य विद्युत् तारकों को मलिन कर दिया था। रात्रि ने अभी अपना श्याम वसन धारण नहीं किया था, जिससे विद्युत-प्रकाश म्लान थे, पागल की दृष्टि-से—रिक्त।

उमड़ती भीड़ को चुपचाप देख रहा था। अनेक राष्ट्रों के लोग उसमें थे—चीनी, मलयवासी, इन्डोनेशी, विदेशी पर्यटक—श्वेत, पीले, गेहुँए, चमकते रेशमी सूट पहने, विशेषतः चीनी, पश्चिम से प्रभावित। उनके विपरीत वे थे पेवंदभरे कपड़े पहने, डरते फिरते, सूनी नजरें फेंकते, भिखमंगों सरीखे, पर भिखमंगे नहीं। फिर सैनिक, ब्रिटिश और अमरीकी। कुछ वे जो कोरिया के मोर्चे पर जा रहे थे, कुछ वे जो उस मोर्चे से दम लेने लौट रहे थे। नौसैनिक हाथ में हाथ दिये शराब की गन्ध से हवा गन्दी करते, फूहड़ गाने गाते, बदतमीज, खतरनाक, कुछ भी कर बैठने वाले।

नारियां, जो चित्र-विचित्र लिबास पहने थीं, झीनी मलमल, पारदर्शी रेशम, महीन लिनेन। पैरों में सुनहरी जूतियां। अनजाना बूझता रह जाए कि इन कपड़ों का मतलब क्या था, वे ढकते क्या थे? उनका उद्देश्य आकृति को शायद एक भंगिमा देना था, जिस्म लाग़र को एक

खम। दूसरी ओर दृष्टि आकृष्ट हुई। उसने सागर-हरित झीना वस्त्र पहन रखा था जिसके किमखाब में ईरिस के फूल कढ़े थे। मानिक जडे सोने का पिन कन्धे का कपड़ा चूनट में कसे हुए था और कपड़ा चूनी चादर की भांति लटक रहा था। शरीर का दाहिना भाग चमकती मेखला की तरह खुला था। नीचे फिर एक तंग अधोवस्त्र नीचे तक बगल में कटा हुआ जो कदम-कदम पर खुलता और बन्द होता था। उसके पास जो वह दूसरी खड़ी थी, प्रायः उतनी ही कमनीय थी। वस्त्र उसका तेहरी मलमल का था, धारियां लिये। पुरातत्व के अध्ययन में नग्न मूर्तियां देखते रहने का अभ्यास होने से निरावृत नारी को आवेगरहित ही देख सकता था।

एक हिली, पीछे की ओर फिरी। लगी चीनी ही, पर दूर दराज की-सी अभिराम संकर, निष्कलंक सुन्दर। दूसरी के नक्श भी तीखे, अनुपम सुन्दर, शायद पिछली ही पीढ़ी में यूरोपीय स्खलन का मूर्त परिणाम। पहली के वस्त्रों का कटाव असाधारण था, चीनी किसी प्रकार नहीं। नितान्त एक से बने वस्त्रों के उस जंगल में सर्वथा अनूठा। किसी ने धीरे से कहा (शायद मेरे ज्ञान के लिये)—'वेश्याएँ!'

सो वेश्याएँ थीं वे। हांगकांग की दस हजार रजिस्टर्ड वेश्याओं में से दो, पचास हजार अलिखित वेश्याओं में से और उनसे भिन्न जो शंघाई से भाग आई हैं। पाप की साकार परिणति वे अपने कोठों पर, हांगकांग के वेश्यालयों, होटलों, सरायों, भट्टियों में अपना घृणित रोजगार चला रही हैं। जाननेवालों का कहना है कि ढलती रात सड़क पर चलने वाले अगर सावधान न हों तो तवायफों का उन्हें उड़ा ले जाना कुछ अजब नहीं!

सांझ अब भी रात नहीं हो पाई थी। गर्मी का उजाला कुछ ऐसा होता है कि सांझ का धुंधलका उनमें देर तक उलझा रहता है। धूमिल तारे, आकाश में निष्प्रभ, धीमे झिलमिला रहे थे। इतने धीमे कि रात नक्षत्रहीन लगती थी—नक्षत्रहीन, चन्द्रहीन, निरभ्र।

मैं भीड़ के बीच खड़ा था। या शायद लोगों के धीरे-धीरे पास बढ़ आने से भीड़ के बीच हो गया था। भीड़ चुप खड़ी न थी, हिल-डुल रही थी। उसकी गति ने मुझे अपने वातावरण से सचेत कर दिया। वातावरण जो उल्लसित नाटमय था। मैं अपने साथियों के बीच से भाग आया था। उसकी सुधि आई तो होटल लौट पड़ा। डाक्टर किचलू अब भी प्रेस-कान्फ्रेंस में पत्रकारों के प्रश्नों का उत्तर दे रहे थे।

जल्दी में संक्षिप्त स्नान। शीघ्रता से नीरस भोजन। हल्की प्रेस इन्टरव्यू।

थका न था, पर बिस्तर जैसे पुकार रहा था। किन्तु हांगकांग का आकर्षण अधिक सम्मोहक था। कमरे के साथी श्री गुटुपल्ली अपने स्थानीय चीनी मित्र श्री वांग के साथ कभी से घूमने निकल गए थे। तभी डाक्टर अलीम ने नीचे से फ़ोन किया। खाड़ी पार हांगकांग जाने को बुलाया। उसका मोह दबा न सका। कूदकर लिफ़्ट में जा खड़ा हुआ और क्षण भर में नीचे चौड़ी सड़क पर डाक्टर अलीम और दूसरे मित्रों के बीच।

साथ एक स्थानीय सज्जन थे—हमारे गाइड, चीनी सरकार के प्रतिनिधि। स्टीमर के घाट पर पहुँचे। स्टीमर बराबर चलते रहते हैं, हर पाँच-दस मिनट पर। पहुँचते ही स्टीमर मिला। भीड़ के साथ-साथ सरकते उस पर चढ़े। बीच में एक बड़ा हाल, जिसमें सिगरेट पीना मना। आगे-पीछे एक-एक खुले मैदान सी जगह। बाहर ही बैठे, क्योंकि साथियों को सिगरेट पीनी थी। विशेषतः डा० अलीम तो सिगरेट के आदी हैं।

सामने का एक दृश्य भुलाया नहीं जा सकता। हांगकांग कितना मनोहर है, इसका अन्दाज़ कोई उसे बिना देखे नहीं लगा सकता। जेनोआ देखा था, नेपुल्स देखा था, इसी तरह कारमेल पहाड़ की ढाल पर बसा हैफ़ा देखा था, पर निःसंदेह हांगकांग तीनों से परे है। अभिराम सुन्दर, अपना सानी आप, लाखों-करोड़ों बल्ब, पहाड़ी ढाल पर बने

भवनों में, उनके शिखरों-बुर्जियों पर, ऊंचाईयों, गहराइयों में चमक रहे थे। रात, जो अब तक गहरी हो चुकी थी, प्रकाश के बहते सागर में नहा रही थी। सामने जलवर्ती भूमि पर दूकानों की कतार थी। उनके साइन-बोर्ड निरन्तर जलते-बुझते बल्बों से दमक रहे थे।

देर तक हमलोग तटवर्ती प्रशस्त राजमार्ग पर घूमते रहे।

तट से लगा चौड़ा रास्ता ऋद्ध दूकानों के नीचे से चला जाता है। दूकानों में 'पाँचों दुनियाँ' का माल ठकचा हुआ है, वे सारी चीजें जिन्हें मनुष्य की सूझ और हिकमत ने मुहैया किया है। उनकी कतारों में, जो पच्छिम के नवीनतम से नवीन लगती है, वह सब कुछ प्राप्य है जो व्यापार समुद्र पार से लाता है। सब कुछ, कड़ा से कड़ा चमड़ा, चीर देने वाले तेज़ खंजर से लेकर कोमल-से-कोमल त्वचा को कोमलतर कर देने वाले शीतल प्रसाधन-द्रव्य तक। हांगकांग के जीवन के ये दोनों ही प्रतीक हैं, उसकी क्रूरतम हत्या के, मृदुतम कमनीयतम प्राणों के।

हम चहलकदमी करते रहे। सामने दूर निकल आते, पीछे लौट पड़ते, उस अमित वैषम्य को निहारते, उस वैपुल्य और दारिद्र के बीच, वैपुल्य के बीच दारिद्र, जहाँ छैले भिखारियों से कन्धे रगड़ रहे थे, जहां किलकारियों की कोख से टीस निकल पड़ती थी। आँखें चौंधिया देने वाली चमक, वेदाग साफ आकृतियाँ और उन्हीं के बीच अंधेरी रात से काले, घिनौने गन्दे बिसूरते इन्सान, कलपते कोयले से काले कुली। हम देखते-फिरते रहे। दृश्य का प्रभाव कभी हमारी आवाज़ ऊँची कर देता, कभी धीमी।

रात चढ़ती जा रही थी। धीरे-धीरे भीड़ भी छँटती जा रही थी। लोग घरों को लौट चले थे। केवल पियक्कड़ सैनिक और माझी-फौजी गाली बकते फिर रहे थे।

रह-रह कर सीटी बजा देते, बीच सड़क पर एक-दूसरे से चिपट जाते, चूमने लगते। 'टामी' नाचते, कय करने लगते। 'वेटरन' किलकारियां भरते, कहकहे लगाते, किसी को बेआबरू कर देने को, पिस्तौल दाग देने

को, छुरा भोंक देने को तैयार। औरतों को जहां-तहां छेड़ देते, आवाजें कस देते, लोग चुपचाप मुस्करा कर, तरह देकर, जैसे पागलों को देते हैं, चले जाते। यह हांगकांग है, कुछ भी हो सकता है, रोज़ एकाध खून होते रहते हैं। हम भी लौट पड़े। सुबह दस बजे ही कान्तोन के लिए ट्रेन में रवाना होना था। सोचा, तड़के एक बार और घाट की ओर निकल आऊँगा।

सीधा खाट पर जा पड़ा—बिस्तर पुकार रहा था। ग्यारह बज चुके थे। लेटते ही नींद लग गई।

उन्निद्र का रोगी हूँ। साधारणतया नींद नहीं आती। पर आज की रात सोया, खासी गहरी नींद। नींद सहसा खुल गई। घड़ी में देखा तो चार बज चुके थे। बाहर चिड़ियां चहचहा रही थीं। खिड़की के नीचे सड़क पर औरतों की आवाज़, तीखी घुंघरदार हँसी, टकरा कर गूंज रही थी।

गुटुपल्ली खर्राटे भर रहे थे। पर मुझे तो घाट बरबस खींचने लगा।

उठा और आध घंटे में ही बाहर निकल गया।

घाट प्रायः निर्जन था। नगर प्रभात के उस पिछले पहर की मादक नींद में विभोर था, जब 'पुनःपुनर्जायमाना पुराणी' सतत किशोरी उषा चराचर की आँखों पर जादू डाल देती है, जब उसके स्पर्श से स्वप्नों का सम्मोहक संसार सिरज उठता है।

वातावरण शान्त था। शान्ति के सिवा जैसे किसी अन्य का अस्तित्व न था। जहाज़ नीड़स्थ निद्रित पक्षियों की भांति घाटों पर बँधे पानी पर डोल रहे थे।

हाँगकाँग सदियों छोड़े प्राचीन नगर की भांति सूना पड़ा था, सूनेपन का अकेला अविकल विस्तार। अलसाया प्रभात खाड़ी पर उतरा आ रहा था, चराचर को रंगता। म्लान बैंजनी लहरियों में पीताभ चमक नाच रही थी। देर तक खड़ा मुग्ध मन उषा के रथमार्ग की ओर देखता रहा। सहसा पौ फट गई।

उगते हुये सूरज को देखते ही याद आई कि दस बजे की गाड़ी से कान्तोन जाना है। भागा होटल, लोग उठ चुके थे, नहा-धो रहे थे। मैं भी अपनी बिखरी चीजें सम्हालने, पैक करने लगा। फिर अपने बकसे बाहर खड़े आदमी के सुपुर्द कर आपको लिखने बैठ गया। अभी ट्रेन में तीन घंटे और है और मैं यह अमूल्य समय नष्ट करना नहीं चाहता, न यहां, न ट्रेन में। इसलिये इन तट की देखी चीजों का ब्यौरा पहले, बाद में उस दृश्य का आनन्द जिसकी आशा, ट्रेन में बैठ जाने पर, दिखाई गई है।

घंटे भर में मैं भी तैयार हो गया।

अब खत्म करता हूं। तैयार होने स्टेशन चलने का शोर कानों में भरने लगा है; गुटुपल्ली मुझे कलम रोकने को मजबूर किये दे रहे है।

अलविदा ! सबको प्यार—आपको, कान्ता को, दूसरे बच्चों को।

श्री बद्रीविशाल पित्ती, स्नेहाधीन
मोतीभवन, भगवतशरण
हैदराबाद, भारत।

कान्तोन,

२१-९-५२

बाबू जी,

कान्तोन से लिख रहा हूँ। कान्तोन दक्खिनी चीन के क्वान्तुंग प्रान्त की राजधानी है। खेद ही है कि आपको पहले हांगकांग से न लिख सका। बात यह थी कि कुल रात भर तो वहाँ ठहरना हुआ और वह अकेली रात इधर-उधर फिरने और जगहें देखने में खत्म हो गई। मुझे मालूम है कि आप हवाई-यात्रा से कितने घबड़ाते हैं और जानता हूँ कि किस परेशानी से आप मेरे पत्र की राह देख रहे होंगे। इसलिए आरम्भ में ही कह दूँ कि प्लेन की यात्रा सुखद रही और हम उसी शाम हांगकांग पहुँच गए, प्रायः एक ही उड़ान में। केवल आध घण्टे के लिए बंकाक में रुके। हममें से जो पैन-अमेरिकन एअरवेज से न चलकर बी. ओ. ए. सी. जहाज से चले थे उन्होंने रात रंगून में बिताई।

हॉगकॉग पहुँचते ही हम महान् चीनी प्रजातंत्र के अतिथि बन गए और नए-चीन की ओर से श्री पांग-ताक-सेंग ने हमारी बड़ी खातिर की।

कौलून का छोटा-सा रेलवे स्टेशन बड़ा साफ-सुथरा है। है भी वह उस कौलून होटल के बिल्कुल पास ही जहाँ हमने रात बिताई थी। फिर भी चीनी इखलाक और आतिथ्य-प्रियता ने हमको यह छोटी दूरी भी पैदल तय न करने दी और हमें स्टेशन-कार में ही जाना पड़ा। प्लेट-फार्म पर भीड़ न थी। जो थोड़े से मुसाफिर थे वे अपना असबाब तौल रहे थे और अनेक गाड़ी में बैठ चुके थे। गाड़ी कुछ देर पहले ही प्लेट-फार्म पर आ गई थी। वस्तुतः न तो हॉगकॉग की ब्रिटिश सरकार चीन

के साथ अधिक यातायात प्रोत्साहित करती है और न चीन ही अपने आक्रांता के साथ मैत्री का विशेष इच्छुक है। इससे मुसाफिरों का आना-जाना दोनों ओर कम ही होता है, यद्यपि दोनों के बीच व्यापार प्रचुर मात्रा में होता है।

हमारा सामान पहले ही प्लेटफार्म पर पहुँच चुका था और अब तौला जा रहा था। इस बीच हम इधर-उधर बेफिक्र फिरते और चन्द दोस्तों से बिदा लेते रहे जिनसे परिचय हाल ही हुआ था। एक भारतीय सज्जन, जो सिन्धी सौदागर थे और हॉंगकॉंग में ही बस गए थे हमारे पास आकर अनेक विषयों पर बात करने लगे। उनसे मालूम हुआ कि वे हॉंगकॉंग में बहुत दिनों से रह रहे हैं और कि उनके से अनेक अन्य भी हैं जिनका रहना वहाँ एक अर्से से हुआ है। हमने स्वयं कौन्लुन में अपने होटल के पास ही अनेक सिन्धी दूकानें देखी थीं जो खूब चल रही थीं। बाजार सुस्त न था यद्यपि दूकानदारों का कहना था कि बिक्री में मन्दी आ गई है। इन सिन्धी सज्जन से मालूम हुआ कि हॉंगकॉंग में हिन्दुस्तानी सौदागरों की संख्या खासी है, उनके परिवार वालों को लेकर हजार से भी ऊपर। उन्होंने बताया कि बँटवारे के बाद हिन्दुस्तान से आने वालों की एक बाढ़-सी आ गई है। अनेक सिन्धी स्वदेश में सन्दिग्ध जीवन की टोह में इधर-उधर न फिरकर सीधे हॉंगकॉंग चले आए हैं।

पुलिस की चौकसी के बावजूद भी भिखमंगे प्लेटफार्म पर घुस आए थे और बार-बार हमारी बातचीत में विघ्न डाल रहे थे। हॉंगकॉंग में ठहरना बहुत कम हुआ था परन्तु मुझे या मेरे किसी साथी को किसी पाकेटमार से पाला न पड़ा, यद्यपि प्रत्येक सरकारी आफिस और सार्वजनिक इमारत पर पाकेटमार की तस्वीर वाले पोस्टर चिपके थे जिनसे जनता सावधान की गई थी। बड़े-बड़े अक्षरों में अनेक इश्तहार यहाँ भी टिकट-घर के चारों ओर चिपके हुए उसकी सुन्दरता और सफाई को नष्ट कर रहे थे। ऐसा शायद जनता की भलाई के लिए ही किया जा रहा था और कानून के रखवारे निरन्तर उन साहसिकों को समाज से दूर करने

का प्रयत्न कर रहे थे जिनका अस्तित्व आर्थिक स्थिति अपने कारणों से स्थायी बनाती जा रही थी, तत्सम्बधी कानून जिसे पनपने और फैलने के लिए विशेष भूमि तैयार करता जा रहा था।

गाड़ी कौन्तून से दस बजे छूटी। गद्दीदार सीटें आरामदेह थीं और यूरोप की गाड़ियों की तरह डब्बों की खिड़कियाँ लम्बे-चौड़े शीशे की थीं जिन्हे ऊँचा-नीचा किया जा सकता था। परन्तु डब्बे निस्सन्देह उनसे कहीं अधिक साफ थे और उन्हें साफ रखने की बराबर कोशिश की जा रही थी। रेलवे अफसर ने सहसा प्रवेश किया और हमारे टिकट देखे। एक खोन्चे वाला, पर ऐसा नही जैसे अपने स्टेशनों पर चीखते फिरते है, भीतर डब्बे के बीच से बेंत की बाल्टियों में सुन्दर नारंगियाँ और फल के रस से भरे ठंडे बोतल रखे गुजर गया, हमारी ओर शिष्टता से देखता, जिन्होंने मांगा उन्हे नारंगी या बोतल देता।

देहात सुन्दर था, छोटी-छोटी बस्तियों से आकर्षक लगता था। गाँव थोड़ी-थोड़ी दूर पर बिखरे पड़े थे। जब-तब एक छोटा कस्बा दृष्टिपथ मे आ अटकता और हरे खेतों के प्रसार को मंजिल की भांति जैसे रोक देता। सामने नीची पहाड़ियाँ दौड़ रही थी, अधिकतर ऊसर, सिवा ठिगनी झाड़ियों के। पर उनका सिलसिला आँखों को भला लगता था। क्षितिज तक फैला मैदान झीलों और तालाबों से भरा था। मैदान, जो मालिकों के लिए वरदान सिद्ध होता अगर वे उसे जोतते, या जिन्होंने उसे जोता था जमीन अगर उनकी होती। अनेक किसान बाँस की वह हैट पहिने जिसका उन्होंने सभ्यता के आरम्भ मे आविष्कार किया था, कमर तक नंगे झुके खेत निरा रहे थे। अनेक अकेली भैंस से खेत जोत रहे थे।

हाँगकाँग पहुँचने के बाद मै पहली बार देहात में ट्रेन का सफर कर रहा था और इसमें सन्देह नहीं कि मुझे यात्रा बड़ी सुखद प्रतीत हुई। चीनी सरहद दूर न थी और हम प्रायः घण्टे भर में ब्रिटिश सीमा पर पहुँच गए। नए चीन की सीमा पर पहुँचते ही हमारे डब्बे में जैसे खल-

बली सी मच गई। हम उस देश के निकट पहुंच रहे थे जो हममें से अनेक के लिए स्वप्न-देश रहा था। देश जो इधर कटु और कमीने प्रोपैगैण्डा का शिकार बनाया जा रहा है। ब्रिटिश जमीन पर आखिरी रेलवे स्टेशन शुनचिन है वैसे ही जैसा चीन का पहला स्टेशन लोहू। ब्रिटिश अमलदारी और स्वतन्त्र चीन को एक तंग नाला अलग करता है, नाला, जो वस्तुतः बरसाती पतली नदी है और आजकल सूख गई है। उस नाले के दोनों ओर तार खिंचे हैं, जाल बुने हुए तार, काँटीले और सादे हथियारबन्द सैनिक दोनों ओर खड़े अपनी-अपनी सीमा की चौकसी करते हैं। उसे देख मुझे तत्काल एक दूसरी सीमा की याद आई। दूर दूर पश्चिम इज़्रेल में जिसे मैंने १६५० की अक्तूबर में देखा था। अरबों और यहूदियों की पारम्परिक शत्रुता भयानक रूप धारण कर चुकी थी। बेथलहम के निकट, जायन पर्वत पर, और जार्डन के पार सीरिया की सीमा पर यह शत्रुता पागलपन का रूप धारण कर चुकी थी और यदि उस सीमा पर कोई अपनी पूरी ऊँचाई से खड़ा होना चाहता तो कुछ अजब नहीं कि परवर्ती गोली तत्काल उसकी कपालक्रिया कर देती। यहाँ लोहू में इस प्रकार का वातावरण नहीं था। दोनों ओर सीमाएं खुली हैं और भरी मालगाड़ियाँ खिंचे लकड़ी के अवरोधों के पार तख्तों के पुल से नाले के ऊपर आती रहती हैं। वह स्वतन्त्र भूमि जिस पर दोनों में किसी का कब्जा नहीं केवल कुछ ही गज लम्बी है और वस्तुतः अवरोध स्वतन्त्र देशों की सीमाओं का अवरोध लगता ही नहीं। दोनों ओर की हथियारबन्द फौजें कहीं पास ही थीं, यद्यपि न कहीं कोई परेड हो रही थी और न कहीं इक्के-दुक्के सैनिकों के सिवा कोई फौजी दस्ता दिखाई पड़ा। स्पष्ट, न तो चीन को लड़ाई पसन्द है और न हाँग-काँग के ब्रिटिश अधिकारी उससे इस समय उलझना चाहते हैं। दोनों इस कारण अपनी सेनाएँ दृष्टिपथ से दूर रखते हैं।

ट्रेन से उतरकर हम ब्रिटिश अवरोध पहुँचे। वहाँ एक अंग्रेज अफसर चुपचाप खड़ा हमें देख रहा था। किसी ने हमारे पासपोर्ट इकट्ठे कर

लिए थे जो उसके सामने एक पर एक रखे थे। हमारा असबाब भी पास धरा था और हम अपने बक्सों की चाबियाँ लिए अफसर के इशारे पर उन्हें खोलने को तैयार खड़े थे। परन्तु अंग्रेज़ अफसर, जो गंभीर और प्रायः रूखा लग रहा था, बड़ा सज्जन निकला। उसने पासपोर्टों में जरूरी खानापूरी करके हमें उस पार निकल जाने की इजाजत दे दी। हमारे असबाब को हाथ तक न लगाया।

चीनी अवरोध पहले ही हमारे लिए हटाया जा चुका था, पर कुछ लोग वहाँ खड़े हमारी ओर बड़ी नर्मी से मुस्करा रहे थे। कोई खास स्वागत न हुआ, यद्यपि स्टेशन पर हमारे लिए मुँह-हाथ धोने और आराम करने का इन्तजाम था।

स्टेशन की इमारत करीब फर्लांग भर पर थी। रेल की पटरियों के सहारे ही हम उस ओर चले। राह में कुछ मजूर मिले जो मस्ती से चले जा रहे थे। हमें देख उनके चेहरे पर मुस्कान बरस पड़ी। चीनी चेहरा चौड़ा होता है, उस पर मुस्कान जमे जमकर बैठती है, वस्तुतः चेहरे से भी चौड़ी। अभेद्य से अभेद्य व्यक्ति के लिए भी उस मुस्कान की उपेक्षा कर जाना असम्भव है, लौटकर मुस्कराना ही पड़ता है। और यदि आपने मुस्करा दिया तो चीनी हलके से सिर हिलाकर आपका अभिवादन निश्चय करेगा। दो दिलों के बीच सहसा एक राह कट गई जिससे होकर मानव-मृदुता का दूध बह चला। मुझे पश्चिम की याद आई, यूरोप की, वहाँ भी लोग साधारणतः दूसरों को देखकर मुस्कराते हैं, परन्तु केवल परिचितों के प्रति, अपरिचितों के प्रति प्रायः कभी नहीं जब तक कि अनजाने हृदय असाधारण कोमल न हों।

स्टेशन के प्रतीक्षालय में पहुँचे जहाँ आराम करने का इन्तजाम था। पहली बार चीनी फर्नीचर देखा। गहरा आबनूसी, नितान्त काला। कुर्सियाँ और सोफे अत्यन्त आकर्षक थे उनकी मोटे पीठ की और कुछ झुकी थीं जिससे गद्दे के अभाव में भी वे सुखदायक हो सकें। स्टूल ढलवाँनुमा थे, शीतल, और मेजें जड़ाऊ काम का नमूना थीं। उनकी वार्निश दर्पण की

तरह चमक रही थी। उनकी जमीन में श्वेताभ लहरें-सी बिछी थीं। एक कोने में मेज पर अनेक सचित्र पत्र-पत्रिकाएं गंजी थी। जिनमें 'सोवियत यूनियन' और 'पीपुल्स चायना' भी थे।

गुसलखाना क्या था खासा बड़ा हाल था जिसकी दीवारों में मुँह धोने को बेसीनें लगी थीं। टंगे तौलियों से बराबर भाप निकल रही थी जिसकी सुगन्ध कीटाणुनाशक द्रव्यों की कड़ी गन्ध को दबा देती थी। मेज पर चाय रख दी गई थी, चीनी चाय, गन्ध बसी, स्वादु। बाहर धूप तेज थी, भीतर भी गर्मी खासी थी। दोपहर हो चुकी थी और जब हमें सुन्दर मोरपंखियां दी गई तो गर्मी से बड़ी राहत मिली। अभी स्टेशन में बिजली नहीं आई थी, यद्यपि उसके तार चारों ओर दौड़ाए जा चुके थे और 'कनेक्शन' किसी दिन मिल सकता था हांगकांग, लोबू, कौलून, और उनके आसपास के देहात कलकत्ता के ही रेखान्तर में हैं और उनका तापक्रम भी प्रायः कलकत्ता जैसा ही है। गर्मी है पर दम घोटने वाली गर्मी नहीं।

स्टेशन की इमारत अभी पूरी बनी नहीं, अभी बन ही रही है, चारों ओर मजदूर काम कर रहे हैं। मजदूर लड़के और लड़कियां एक-से लिबास पहिने। लिबास मोटे नीले कपड़े का कोट और पतलून, कोट गले तक बटनवाला और पतलून बगैर क्रीज़ की उटंगी पैरों से काफी ऊँची टँगी। साधारण मजूरों से वे कुछ ऊँचे तपके के लगे, कुशल मजूर, पढ़े-लिखे और बड़ा मजा आया जब गोपालन साहब एक लड़की को कमकरों की भीड़ से खींच लाए। और लगे उससे तावड़तोड़ प्रश्न करने। जो हमें चाय पिला रही थीं उनमें से एक अंग्रेजी जानती थी। उसने दुभाषिये का काम किया।

गोपालन कुशल 'पार्लमेन्टेरियन' हैं, उन्होंने मुस्कराती तरुणी से प्रश्न पर प्रश्न पूछने शुरू किए—"तुम्हारा पेशा क्या है? विशेष रुचि किस बात में है? कितना तनखाह पाती हो? क्या खर्च करती हो? कुछ बचा भी लेती हो? विवाह हो चुका है? बच्चे? माता-पिता?"

लड़की तुरत प्रश्न होते ही उनका उत्तर देती गई। उसे कहीं झाँकना समझना न पड़ा। शब्दों में उसने पेंच न डाला, भावों को रंगा नहीं। सादे, बिना किसी बनावट के उत्तर जो सीधे हृदय से निकले थे, सच्चे और विश्वसनीय। उसके एक परिवार था। परिवार के अनेक जन काम करते थे और वह वेतन का एक अंश बचा लेती थी। उसकी रुचि साथ के अपढ़ मजदूरों को अखबार सुनाने में थी। वह काम वह बगैर किसी लाभ की इच्छा के करती थी, अपनी खुशी से। उसे अर्थशास्त्र के अध्ययन में भी रुचि थी और उसके लिए अक्सर वह रात्रि के स्कूल में जाया करती थी।

तीन प्रश्न, विशेषकर उनके उत्तर मुझे बहुत रुचे।

"वह कौन है ?" गोपालन ने सामने दीवार पर टँगे चित्र की ओर संकेत करते हुए पूछा।

"महान् जननायक, शांति का महत्तर प्रेमी।" लड़की ने उत्तर दिया। उसका चेहरा खिल उठा था। उसने चित्रगत जोजेफ स्तालिन का नाम न लिया।

"मान लो, रूस चीन पर आक्रमण कर दे ?"

"क्या ? कभी नहीं !"

"मान लो।"

"असंभव को नहीं माना जा सकता। रूस हमारे देश पर हमला हरगिज न करेगा। वह (पुरुषवाचक) किसी मुल्क पर हमला न करेगा, वह शांति का प्रेमी है।" उसने स्तालिन के चित्र की ओर इशारा किया। "नहीं, हरगिज नहीं !" और उसने जोर से हवा में अपने हाथ से नकरात्मक चेष्टा की।

"मान लो, च्यांग चीन पर हमला करता है ? यह तो असंभव नहीं है।"

"वह हमला करने का साहस नहीं करेगा। परन्तु इस संभावना से मैं इन्कार नहीं कर सकती।"

"लेकिन तब तुम करोगी क्या ?"

"क्यों, लड़ेंगे और उसे धूल चटा देंगे !" लड़की की सुन्दर चेष्टा कुछ परुष हो गई, आवेगों से तनिक लाल। जनानी ललाई नहीं, एक-दूसरे तरह की लाल चमक।

"तुम जानती हो कि उसके पीछे संयुक्त राज्य अमेरिका है, वस्तुत. स्वयं संयुक्त-राष्ट्र संघ है।" मैंने पूछा।

"हाँ, जानती हूँ। पर हमें परवाह नहीं, क्योंकि अगर ऐसा हुआ भी तो हमें मालूम है कि स्वदेश के लिए कैसे मरा जाता है। कोई हमें हरा नहीं सकता क्योंकि हम किसी मुल्क पर हमला नहीं करते और हम अपने मुल्क की रक्षा करना जानते हैं। पिछले बारह साल से हम उसके लिए लड़ते रहे हैं। आजादी का प्यार करने वाले कभी आक्रान्ताओं से हार नहीं सकते। रही संयुक्त-राष्ट्र संघ की बात। हमें मालूम है कि अमरीकी संयुक्त राज्यों के कुछ पिट्ठू हैं, पर दुनिया के राष्ट्र ! ना, वे तो निश्चय हमारे पक्ष में होंगे क्योंकि संसार भर के ईमानदार लोग आजादी और अमन को प्यार करते हैं।" शब्दों की अटूट धारा ने मेरे प्रश्नों का उत्तर दिया।

मैं चुप हो रहा। मैं जानता था कि बारह वर्ष की लड़ाई ने चीन को नोचा-खसोटा है और चीन ने उफ़ नहीं की है, न एक इंच जमीन खोई है। उल्टे अपनी आजादी के दुश्मनों को कुचल दिया है।

"भारत का प्रधान मंत्री कौन है ?" गोपालन ने पूछा।

"मिस्टर जवाहरलाल नेहरू," नौजवान लड़की ने उत्तर दिया।

"उनके विषय में क्या जानती हो ?"

"वह शांति का महान् प्रेमी है क्योंकि उसने एक पत्र स्तालिन को लिखा था और दूसरा एचेसन को कि वे कोरिया का युद्ध बन्द करने में सहायता करें और इस प्रकार जगत में शांति स्थापित करने में सहायक हों।"

हमें मालूम था कि वह जो कहती है सच है। स्तालिन ने पण्डित

नेहरू के पत्र का स्वागत किया था, एचेसन ने उसका अपमान। लड़की भी इसे जानती थी और उसके उत्तर ने हमें स्तम्भित कर दिया।

"क्या तुम्हें मिस्टर नेहरू के बारे में कुछ और भी मालूम है?" गोपालन ने अपना आखरी सवाल पूछा।

"शायद, हाँ। अभी हाल में उन्होंने पाँच शक्तियों में शांति सम्बन्धी सन्धि का प्रस्ताव किया है।" कहना न होगा कि इस उत्तर ने हममें से अनेक को विकल कर दिया, क्योंकि १९ व्यक्तियों के हमारे दल में अनेक ऐसे थे जिन्हें इस बात का पता न था!

नए चीन से हमारा यह पहला परिचय था। यह चीन इतिहास के चीन से, मूढ़, अफीमची चीन से, सर्वथा भिन्न था। यह एक ज़रा-सी छोकरी थी, (मुझे माफ करे वह लड़की, आप भी मुझे माफ करें!) जो बात कर रही थी। बरबस हमें अपने देश की याद आ गई। जो कुछ देखा और सुना था, वह अपने देश के स्मृति पर छा गया। सोचने-विचारने को काफी मसाला मिल गया। हम चुप हो रहे। कैसी जानकारी है। आक्रान्ताओं के प्रति कितनी तीव्र और क्रूर प्रतिक्रिया है! शांति के लिए कितनी गहरी अन्तःप्रेरणा है! निस्सन्देह हम एक नए क्षितिज के सामने थे।

हमें कान्तोन ले जाने के लिए स्पेशल ट्रेन आ रही थी उसी में हमारे स्वागत करने वाले भी थे। एक बजे के करीब गाड़ी पहुँची और करीब तीन लड़के-लड़कियाँ उतर कर प्रसन्नवदन हमारी ओर बढ़े। इस स्वागत में भी कोई तैयारी न थी। दमकते चेहरों पर से मुस्कराते उन्होंने हमसे हाथ मिलाया। पुराने मित्रों की भांति हम मिले और चाय पीते-पीते बातें करने लगे। अधिकतर उनमें विश्वविद्यालयों के छात्र थे, कुछ कान्तोन के, कुछ शंघाई के, कुछ पेकिंग के जो सीधे हमारे पास आए थे, जिससे हमारी मुश्किलें वे आसान कर सकें। लड़के और लड़कियाँ दोनों ही मजबूत और सुखी लगते थे। उनमें से अनेक भाषाओं के विद्यार्थी थे और अंग्रेजी बोल लेते थे। एकमात्र अंग्रेजी ही हमारे भावों की वाहिका

थी। लड़कियों में एक विशेष उल्लेखनीय थी। वह आक्सफोर्ड की ग्रेजुएट थी और सुन्दर अँग्रेज़ी बोलती थी लहजा उसका सर्वथा 'ऑक्सन' था, उच्चारण नितान्त निर्दोष। वह पेकिंग से आई थी और हमारे नेता की सुविधा के लिए विशेषतया भेजी गई थी। उससे हमें बड़ी मदद मिली जैसी औरों से भी मिली और वह तो हमारे साथ पेकिंग पहुँचने तक रही।

लड़के तो आतिथ्य का भार पूरी तरह निभाते ही थे, लड़कियाँ भी अद्भुत थीं। उनकी जिस बात ने हमें विशेषतः आकृष्ट किया वह था उनका स्वास्थ्य, टटके फूल-सा खिला हुआ, और उनका सहज अकृत्रिम स्वभाव। गजब की शिष्टता थी उनमें। पश्चिम में इतना घूम चुका हूँ पर इस प्रकार का सेवाभाव कहीं नहीं देखा। कद की कुछ ठिगनी, जिस्म भरा, कुछ गठा-फूला था, चीनी रंग में कसे अवयव, मधुर पराजित कर देने वाली मुस्कान, आशावादी तारुण्य की शक्ति जो रूज और पाउडर की मिलावट से किसी अंश में दूषित नहीं हुई, यान्त्रिक शिष्टाचार और प्रदर्शन की बनावट से सर्वथा रहित, वसन्त के प्रभाव जैसा ताजा, वह नया चीनी नारीत्व!

लड़कियों के बाल कानों तक छटे हुए थे, सभी के, काम करने वाली लड़कियों के भी। कुछ ने स्लैक पहिन रखे थे, यद्यपि केवल कुछ ने और अधिकतर वही नीला सूट। कुछ शान्ति-समितियों और नारी-संस्थाओं में काम करती थीं और कुछ ने, जिन्होंने विश्वविद्यालय में भाषा का कोर्स ले रखा था, विदेशी मित्रों की दोभाषिये के रूप में सेवा करना निश्चित कर लिया था, अथवा किसी ऐसे रूप में जिसमें जो उनके देश के लिए उपादेय हो और जिसके लिए वे उपयुक्त हों।

दोपहर का भोजन ट्रेन में हुआ। डाइनिंग कार (खाने का कमरा) नितान्त स्वच्छ था; उसके भीतर की हरएक चीज़ फर्श से छत तक चमक रही थी, और 'मेनू' (आहार की तालिका) बेइन्तहा थी। आप जानते हैं आहार के सम्बन्ध में मेरी बड़ी सीमाएँ हैं, वस्तुतः वे सीमाएँ

हमारे सारे परिवार की है क्योंकि हम लोग न मांस खाते हैं, न मछली न अंडा। चीनी आतिथ्य की इतनी प्रशंसा सुन लेने के बाद मैं बाहुल्य के बीच भी भूखों रह जाने को तैयार आया था क्योंकि जानता था कि दस्तरखान की सारी लजीज चीजें, चीनी पाकशास्त्र की हर किस्म किसी न किसी रूप में मांस की बनी होती है। पर वास्तव में चीनी बड़े व्यवहारकुशल होते हैं उन्होंने अटकल लगा लिया था कि मेरे किस्म के आधुनिक भोजन से अनभिज्ञ कुछ लोग भी शायद आएँ और निरा-मिष भोजन की माँग करें, और वे उस स्थिति के लिए तैयार थे। मुझे भूखो नहीं रहना पड़ा और सामने मेज पर रखी उन सब्जियों, तरका-रियों, गुच्छियों, सलाद, फल और मिठाइयों पर टूटा जो चीनी मेरे-से मेहमानों के लिए काफी मात्रा में प्रस्तुत रखते हैं।

निरामिष भोजन वाली मेज अकेली थी, और मेजों से लगी पर एक ओर, डाक्टर किचलू के मेज के पास ही। और अपनी मेज की नायाब व्यंजनों का भोगने वाला कुछ मैं अकेला ही था भी नहीं। बम्बई की श्रीमती मेहता मेरे सामने बैठी थी और हमने उन सारी चीजों का स्वाद चखा जो हमारे उदार मेजबानों ने प्रस्तुत की थी।

दो बजे के करीब गाड़ी लोबू से चली। कौलून १०० मील दूर था। चार घण्टे बाद हम वहाँ लगभग छः बजे पहुँचने वाले थे। ट्रेन यूरोप की गाड़ियों की तरह थी। उसको एक ओर बरामदा था जिसमें सोने वाले कमरे खुलते थे। डाक्टर अलीम, श्री गटुपल्ली और मैं—हम तीनों एक में जा बैठे। देर तक अपने दुभाषिये से नए चीन के जीवन पर बात करते रहे। देहात बड़ा समृद्ध और हराभरा लगता था। जमीन का कोई टुकड़ा बगैर जोते न छूटा था और मजबूत डंठलों पर अन्न की बालें झूम रही थीं। ये नए चीन की खास बात है, वस्तुतः एक बड़ी खास बात कि उसने कहीं जमीन ऊसर नहीं छोड़ी। न तो पहाड़ों की ऊँचा-इयाँ और न नदियों के दलदल चीनी किसान को डरा सके। धरतीमाता से अपने श्रम का मूल्य वे लेकर ही रहे।

कण्डक्टर ने आकर हमारे बिस्तर लगा दिए। और हम सब जाकर चौड़े आरामदेह बिस्तरों पर सो रहे, उन 'बंकों' पर जो ऊपर की ओर बने हुए थे। नींद की हमें निश्चय आवश्यकता थी—क्योंकि हमने दस्तरखान पर जो करतब दिखाए थे उनके फलस्वरूप हमारी पलकें भारी हो चली थीं।

कोरस की आवाज़ से सहसा नींद खुली। लड़के लड़कियाँ चीनी-राष्ट्रीय गान गा रहे थे। कहीं किसी दल ने टेक छेड़ दी थी जिसे दूसरे डब्बों में औरों ने पकड़ लिया था और गान तरंगित हो चला था। स्वर ऊँचा, और ऊँचा दैत्य की भांति भागती हुई ट्रेन में भी ऊँचा खेतों के पार दूर की क्षितिज की ओर। गान जब बन्द हुआ एक दूसरा कोरस उठा, पर मधुर और कोमल जिसने हमारे मर्म को छू लिया और फिर वह अन्तर्राष्ट्रीय गान जिसका राग ऊँचा उठकर भीतर और बाहर से वातावरण पर छा गया।

हम प्रतिपल कान्तोन के निकट पहुँचते जा रहे थे। ट्रेन धीरे-धीरे मन्थर गति हो चली और धीरे ही धीरे बिलकुल खड़ी हो गई। लड़के-लड़कियों की कतारें आठ बरस की आयु से १४ वर्ष तक की, सामने खड़ी थीं। उनके हाथ में गुलदस्ते थे और वे हमारी राह देख रहे थे। गाड़ी के प्लेटफार्म पर पहुँचते ही ताली बजने लगी। हम नीचे उतरे। एक के उतरते ही एक लड़का या लड़की जैसी जिसकी बारी होती, बढ़ आता, हाथ मिलाता, गुलदस्ता हमारे हाथ में देता और मुस्कराकर हाथ पकड़ लेता। इस प्रकार वह हमारा पूरा चार्ज ले लेता क्योंकि वह हाथ तभी छोड़ता जब स्टेशन से बाहर की कार में बैठ जाते।

बाहर का शोर कानों को बहराकर रहा था। फाटक के दोनों ओर लोग कसे खड़े थे। राष्ट्रीयगान गाया जा रहा था, प्लेटफार्म पर भी, बाहर भी। लोग हमारे स्वागत में खड़े थे। चीन में यह हमारा पहला स्वागत था जिसका सिलसिला तब तक न टूटा जब तक हम उस देश से बाहर न निकल गए। फिर ताली बजनी शुरू हुई। वहाँ ताली

बजाकर ही लोग अतिथि का स्वागत करते हैं, ताली दोनों बजाते हैं, मेजबान भी, मेहमान भी।

यहाँ मैं एक घटना का उल्लेख किए बिना नहीं रह सकता। घटना ऐसी थी जो दुनिया के किसी मुल्क में सराही जाती, जिसने गम्भीर से गम्भीर व्यक्ति को भी 'शाबाश!' कहने पर मजबूर कर दिया। दो कतारों में हम चले जा रहे थे। हमारे एक हाथ में गुलदस्ता था दूसरे में छोटे बच्चे का हाथ। स्वागत की ध्वनि सहसा और गम्भीर हो उठी और हम सभी आगे देखने के लिए पंजों पर उचकने लगे, गर्दनों को सारस की भांति घुमाने लगे। हममें से एक सज्जन विशेष अधीर हो उठे और जो कुछ आड़ से हो रहा था, उसे देखने के लिए कतार छोड़कर बच्चे को घसीटते कुछ कदम एक ओर बढ़े। आठ साल के बच्चे ने उन्हें सहसा रोककर पीछे घसीटा, कुछ नकारात्मक ध्वनि निकाली और अपने मेहमान को खींचकर लकीर में ला खड़ा किया। यह नए चीन से हमारा दूसरा परिचय था। चीन, जो विशाल वृक्ष की भांति अपने इस कोमल अंकुर में पनप चला था, जिसकी इस शिशु की विनम्र दृढ़ता में अपराजित महामानव बढ़ चला था।

अनेक संस्थाओं के लोग खड़े थे। मुस्कराते हुए विनम्र स्वर में वे हमसे मिलने पर आनन्द प्रकट कर रहे थे। यात्रा की थकान और असुविधाओं की बात पूछ रहे थे। उनसे हाथ मिलाते हुए हम आगे बढ़े। आकाश नारों से गूँज रहा था, नारे हिन्द-चीन मैत्री के संसार के लोगों के हित और मैत्री के, माओ-त्से-तुंग के चिर जीवन के।

स्टेशन के बाहर चमकती हुई कारें खड़ी थीं। हमें उनमें बिठाकर हमारे बाल मित्रों ने विदा ली। कारों की लम्बी कतार पुराने नगर के बीच दौड़ पड़ी। चौड़ी सड़कों पर काफी भीड़ थी। दोनों ओर ऊँची इमारतें, दूकानें और हवेलियाँ। अतिथि-गृह तक पहुँचते कई मिनट लगे। अतिथि-गृह नहर के किनारे खड़ा है, नहर या उस शाखा के तट पर जो पर्ल-नदी की है। पर्ल-नदी के तट पर ही नगर बसा है।

बाबूजी, इस पत्र से आपको हमारी हाँगकाँग और कान्तोन के बीच की यात्रा का कुछ हाल मिल जायगा। मा को नमस्कार कहें और बच्चों को प्यार।

प्रणाम।

श्री रघुनन्दन उपाध्याय,　　　　　　　　आज्ञाकारी
४—ए, थार्नहिल रोड　　　　　　　　भगवत.
प्रयाग।

कान्तोन
२१-९-१९५२.

प्रिय सुमन,

कुछ ही घण्टों में, यदि मौसम दुरुस्त रहा, हम पीकिंग के लिए हवाई जहाज़ से रवाना हो जायँगे। जहाज़ कल शाम को ही हमें लेने पहुँच गया। अगर राजधानी या रास्ते में मौसम उतना ही खराब रहा जितना इस समय यहाँ है, या और भी खराब हो गया, तो हमें जहाज छोड़कर रेल से ही यात्रा करनी होगी। चूँकि शान्ति-सम्मेलन छब्बीस को ही आरम्भ हो रहा है, समय बड़े महत्व का हो गया है। और यदि हमें ट्रेन से जाना पड़ा तो आज ही चल देना होगा क्योंकि ट्रेन पीकिंग तीन दिन में पहुँचती है। मौसम के रिपोर्ट का इसी कारण हर मिनट इन्तजार है।

पिछली संध्या में बड़ा व्यस्त रहा, हम सभी, क्योंकि कम से कम वक्त का इस्तेमाल हमने बड़े से बड़े पैमाने पर किया। लोगों से हाथ मिला और यथोचित सम्भाषण कर हाथ-मुँह धो सांध्य भोज के लिए तैयार होने हम होटल की बैठक से बाहर निकले। यात्रा इतनी सुखद रही थी कि वस्तुतः मुझे आराम की बिल्कुल ही जरूरत न थी। आराम किया भी नहीं मैंने। झट मुँह-हाथ धो उस गिरोह में शामिल हो गया जो बाहर जा रहा था। पास का छोटा पुल पार कर हम सड़क पर आ निकले।

चौड़ी सड़कों से होते भीतर गलियों में घुसे और वहाँ लोगों के चेहरों और दूकानों की खिड़कियों पर नजर डालते चले। बड़े-बड़े नए डिजायनों वाले इश्तहार समूची दीवारों पर सटे उन्हें ढक रहे

थे, वैसे ही छोटे-छोटे इश्तहार अपने चेहरे पर तारे और अम्न की फ़ाख्ता चमकाते खिड़कियों में सजायी चीजों पर अपनी लाल आभा डाल रहे थे। राजमार्ग पर भी, रोजगार तेजी से चल रहा था, लोग उसी तेजी से खरीद भी रहे थे गलियों में भी। कहीं मोलभाव नहीं, कीमत के निस्बत कोई तर्क वितर्क नहीं, कोई झमेला नहीं, क्योंकि कीमतें चीजों के ऊपर लिखी-रही थीं। किसी प्रकार के आन्तरिक आर्थिक विरोधों का उद्गम को भेंट देना सम्भव न था, उसका ज़रा भी किसी को अन्देशा न था। भीड़ धक्के देती, धक्के खाती, खरीददारी में व्यस्त थी, अपनी-अपनी खरीददारी में; मगर कहीं इखलाक की कमी न थी, कहीं ज़रा झुँझलाहट न थी। शांत, गम्भीर समझदार लोग; अपनी मुस्कराहट से दिल में जगह कर लेने वाले लोग, विश्वास और सुख उपजाने वाले ये चीनी।

नगर और आस-पास के गाँवों से आए मर्द-औरत। नाटे कद के किसानों की शक्लें अधिकतर दिखाई पड़ रही थीं। औरतें बगैर किसी झेंप या हिचक के आ-जा रही थीं, औरतें-करंट शक्ति-राशि, लड़कियाँ जिनके साफ़ चेहरे। पर प्रकाश जैसे आँख-मिचौनी खेल रहा था और जिन पर आशा और प्रसन्नता गहरी बैठती थी। चेहरे वास्तव में इतने साफ कि लगता था एक-आध परत त्वचा की हटाली गई हो जिससे मानवता का आन्तरिक राग सहसा चमक उठा हो।

यह नई नस्ल है सुमन, जो पुराने से ही उठी है। नस्ल जो मानव को उसका औचित्य देगी, दानव को उसका न्याय दण्ड, और फौलाद को लजा देने वाले अपने जिस्म से उचित पुराने की रक्षा करेगी, उचित नए का निर्माण।

कान्तोन दक्खिनी चीन का सबसे बड़ा नगर है, क्वांतुंग प्रान्त की राजधानी, जहाँ १५ लाख नागरिक रहते हैं। नगर साफ़ चमक रहा है वैसे ही जैसे (लोगों का कहना है) नए चीन के दूसरे नगर। कहीं एक मक्खी नहीं दिखाई पड़ती, न बाजार में, न भोजनालयों में, न फल की

दूकानों में। लोगों का कहना है, वास्तव में मछली और मांस की दूकानों में भी नहीं। एक भोजनालय के पास से निकले; उसकी बाहरी और भीतरी दीवारों पर, दूकानदारों और लोगों को कीटाणुओं और मक्खियों से आगाह करने वाले इश्तहार चिपके हुए थे।

एक और उल्लेखनीय बात देखी—भिखमंगे न थे, जो हांग-कांग में दुर्दशा कर डालते हैं। आज की चीनी परिस्थिति में उनका अस्तित्व ही नहीं हो सकता। उनको देश की विभिन्न निर्माण-योजनाओं के मोर्चे पर भेज दिया गया है। चीन में बेकारी तो खैर है ही नहीं, उसे और आदमियों की जरूरत है, कर्मठ हाथों की। इससे स्वाभाविक है कि चीनी सरकार तन्दुरुस्त जिस्मों को ऊँघते फिरते, दान की कृपा पर जिन्दा रहते गवारा नहीं कर सकती। उस प्रकार का दान आज के चीन में अत्यन्त गर्हित और अपमानजनक समझा जाता है। भिखारियों को काम दे दिए गए हैं। वे आज कारखानों में कारगर साबित हो रहे हैं, मजदूर हैं, किसान और सैनिक हैं।

इसी प्रकार चीन ने वेश्याओं का भी अन्त कर दिया है और कान्तोन की हजारों पहले की वेश्याएं आज इज्जतदार नागरिकों की हैसियत से दफ्तरों, हस्पतालों, बालावासों, स्कूलों, साक्षरता के मोर्चों, ट्रेनों और बसों में काम कर रही हैं। अनेक सम्मान्य पत्नियाँ बन गई हैं और समाज ने उनके नए पतियों को उन्हें स्वीकार करने के कारण अपमान-स्वरूप न माना। इस प्रकार वह पाप का रोजगार, जो अति प्राचीन काल से चला आता था, आज चीन की धरा से मिट चुका है। और यह सारा केवल दो-तीन वर्षों की क्रियाशीलता का परिणाम है! हमें साफ लगा कि वस्तुतः आवश्यकता संकल्प की दृढ़ता की है और सरकारों की अक्षमता वस्तुतः भुलावा मात्र है, उनकी अयोग्यता का उदाहरण मात्र।

भीड़ की खरीददारी देख हमें माल के अटूट आयात का एहसास हुए बगैर न रहा। दूकानों में असमाप्य मात्रा में माल भरा हुआ है, उस

काले भूठ पर व्यंग्य करता जो दुश्मनों के प्रोपेगेण्डा की रीढ है, यानी कि उनकी कभी कमी हो जायगी। उनकी कभी कमी नहीं हो सकती क्योंकि उनमें कमी कर अपने एकान्त व्यवसाय को लाभ पहुँचाने वाले हाथ आज चीन में है ही नहीं। खाद्य पदार्थ दूकानों में ठसे हैं, विभिन्न अन्न अमित मात्राओं में। उसी प्रकार पहनने के कपड़े भी अनन्त मात्रा में उन दूकानों में है—मोटे-नीले कपड़े से लेकर महीन से महीन कलाबत्तू तक, गरीब के वस्त्र से लेकर ऋद्ध बैंजनी, सुनहरी पोशाकों तक। हाँ, आम जनता की रोजमर्रा की चीजों और श्रीमानों द्वारा व्यवहृत वस्तुओं की कीमत में निश्चय बड़ा अन्तर है। अमरीकी माल भी उपलब्ध है, और प्रचुर मात्रा में, पर उसके मूल्य से सामान्य खरीददार हतोत्साह हो जाता है। चीन अपनी आवश्यकता की चीजें देश में बना रहा है और अपनी आर्थिक विषमता को जहाँ वह दिन-रात के परिश्रम से दूर कर रहा है, वहाँ अपने बजट को सन्तुलित करने में लगा है और मूल्य की स्थिरता को दृढ़, निस्सन्देह वह केवल कुछ लोगों के रुचि-वैचित्र्य अथवा चित्त-परिष्कार मात्र के लिए देश से वह अपने कठिन अर्जित धन का धारासार प्रवाह सहन नहीं कर सकता।

सांध्य भोज के लिए देर हो जाने के डर से हम अतिथि-भवन की ओर लौटे। जिज्ञासा भरी आँखें हमारे ऊपर बिछ गईं, पर आँखें ऐसी जिनमें सहानुभूति उमड़ी पड़ती थी, कठोरता का लेश न था। भाषा के अभाव में केवल चेष्टाओं द्वारा मुस्करा और सिर झुकाकर हमने अपने भाव अभिव्यक्त किए और उन्हीं द्वारा उनके भावों को भी समझा। मानव सहानुभूति सारी भाषाओं में महान् है, सारी ज़बानों से अधिक अभिव्यञ्जक। इससे जिस धारा का विकास होता है वह मानवी सीमाओं को पार कर चराचर को अपनी तरलता से निहाल कर देती है। अनजाने नगर में चमकती सड़कों पर घूमते हुए हमें क्षण भर भी अपनी वैदेशिकता का बोध न हुआ। सड़कें अनजानी न लगीं, चेहरे पहिचाने-से लगे।

देर नहीं हुई थी। हमारे मित्र अतिथियों से बात कर रहे थे। भोजन का हाल लोगों से भरा था। हृदयग्राही स्वागत। दृढ़ हस्तमर्दन। अभिराम हास्य। प्रसन्न आलाप। धुएँ के उठते हुए भूरे आवर्त। तीन गोल बड़ी मेजें खाने के सामान से लदी हुई। अनागतों की प्रतीक्षा।

चीन में भोजन साधारण नहीं एक प्रकार का यज्ञ है—अनन्त भोजन। मेज, प्लेटों और रिकाबियों के भार से जैसे कराह उठती है। सुन्दर प्लेटें, छोटी-बड़ी बोतलें और सुराहियाँ, ऊंचे-छिछले चषक, बर्फ-से हल्के डबल रोटी के कतरे, नमक और चटनियाँ—वस्तुत: आगे आने वाले पदार्थों की सूची। और जो आगे आया उसने मुझे तालेमियों की तरुण मिस्री रानी और प्रसिद्ध क्लियोपात्रा की बड़ी बहन बेरेनिस की दावत की याद दिला दी। लिखा है कि उसकी दावतों में भोजन की सामग्री इतनी विविध होती थी, इतनी मात्रा में परसी जाती थी कि आमंत्रित अतिथियों के भोजन के बाद भी इतना बच रहता था कि उससे सौ आदमी भरपूर खिलाए जा सकें।

दावत का आरम्भ स्थानीय शान्ति-समिति के प्रधान की स्वागत-वक्तृता से हुआ। उसका उत्तर हमारे नेता ने मुनासिब तौर से दिया। भोजन का प्रस्ताव करते हुए हमारे मेज़बान ने भारत और चीन की शाश्वत मैत्री की ओर संकेत किया और कहा कि यद्यपि अपने इतिहास के काले युगों में अपनी ही भौगोलिक सीमाओं के भीतर चीन ने खूनी लड़ाइयाँ लड़ी हैं, और शायद भारत ने भी अपने इतिहास के दौरान में अपनी सीमाओं में ऐसी ही लड़ाइयाँ लड़ी हैं, परन्तु इन दोनों देशों में कभी परस्पर युद्ध नहीं हुआ। दोनों का सम्पर्क केवल अध्यात्मिक था, मानवता की आवश्यकताओं के अनुकूल।

हमारा सम्मान उसी शालीन स्मृति के उपलक्ष में हुआ। भावी मित्रता की आशा के अर्थ, नये चीन और उसके निर्माता चेयरमैन माओ से-तुंग तथा हमारे मेज़बानों के स्वास्थ्य के अर्थ। शराब न पी सकने के कारण मैंने संतरे का रस ही शराब के वजन से पिया। भोज शुरू

हुआ। एक के बाद एक चीजें आने लगीं, थाली पर थाली। मांस की किस्में, मछली की किस्में, तरकारियों की किस्में, गुच्छियों की किस्में, कँवल की नाल और कँवल के बीज, बाँस की कोपलें और नव-पल्लवों के विविध प्रकार, और अन्त में चावल, सूप और मिठाइयाँ, हरे, लाल और पीले फलों के पहले।

मांस की किस्में स्वाभाविक ही निरामिष किस्मों से अधिक थीं। मुर्ग और भुने-तले चूजे, छौंकी-बघारी और भरी हुई मछलियाँ जैसे प्लेटों से अपने प्रशंसकों को पुकार रही थीं। चीनी समुद्र में मछली के किस्मों की कमी नहीं और चीन के पीले मछुए अपने काम में उतने ही पटु हैं जितने उनकी कुशलता को सफल बनाने वाले मछलियाँ के स्वाद के प्रेमी। वे परसी हुई मछलियों को काटने, कतरने और फाड़ने में नितान्त सफल हैं। मेरा मतलब उन मित्रों से है जो चीनी भोजन के अभ्यस्त न होने के कारण लकड़ियों का इस्तेमाल न कर पाते थे और मजबूर होकर जिन्हें छुरी और काँटे की शरण लेनी पड़ी थी। कुछ तो लकड़ियों के प्रयोग में सफल भी हो गए पर मैंने जो कोशिश की तो उनके सिरे या तो दूर हट जायें या एक दूसरे पर चढ़ बैठें। इसका नतीजा होता—मेरी झुँझलाहट और एक के बाद एक बैठे हमारे मेज-बानों की तफ़रीह।

सुमन, तुम्हारी बहुत याद आई, क्योंकि मैं जानता हूँ तुम्हें गोश्त और मछली बहुत पसन्द है। और यद्यपि तुम भी लकड़ियों के इस्तेमाल में वैसे ही अनाड़ी साबित होते जैसा मैं हुआ, मुझे यक़ीन है कि हड्डियों को आदिम बर्बरता से तोड़ उनकी मज्जा चूसने में तुम कोई कसर न रखते। निश्चय तुम्हें हिंस्र जन्तुओं का सुख होता। सही है कि निरामिष भोजी होने के कारण जो साग-सब्जी तक ही मेरी सीमायें बँध गई हैं जिससे मांस की स्वादु प्लेटों को छोड़ मुझे गो-वर्ग की चेतना में ही सन्तोष करना पड़ा, परन्तु अपने उन साथियों के सुख का अन्दाज लगाए बिना मैं न रह सका जो बड़ी तन्मयता से अपने ग्रासों को चूस, कुचल और

निगल रहे थे। यहाँ एक खास किस्म की मछली का ज़िक्र किये बगैर नहीं रह सकता। मछली वह बड़ी खूबसूरत थी, बैजनी रंग की। ऐसी मछली एक बार ग्रीस में भी देखी थी, जो वहाँ वालों का कहना है, रति की देवी अफ्रोदीती के साथ ही समुद्र-फेन से जन्मी थी। काश, तुम वहाँ होते और वह 'सकल पदारथ' चखते जो मेरे लिये अलभ्य थे—दस्तर-खान का वह सारा जंगी सामान—मोटी टनी-फ़िश, गर्म डेविल-फिश, बड़ी प्लेटों में और छिछली रक़ाबियों में परसी हुई जिससे वे जलती ही खाई जा सकें। तुम शायद इसलिये अफ़सोस करो कि मैं इन मजेदार चीजों को बस देखता ही रह गया, उन्हे चख न सका। पर मैं तुम्हे यकीन दिलाता हूँ कि मैं अपनी अहिंसा की सीमाओं से सन्तुष्ट हूँ, यद्यपि मैं तुम्हारी या मेरे साथ खाने वालों की क्रूर तुष्टि से किसी प्रकार डाह नहीं करता। जानता हूँ, उन्होंने बड़े स्वाद से खाया और तुम भी, यदि वहाँ होते, बड़े सुख से खाते। यद्यपि मैं स्वयं उस आनन्द का भागी न हो पाया फिर भी मैं उस भोजन के सुख का अन्दाज़ निःसीम मात्रा में उस फ़िलासफर की भाँति ही लगा सकाता हूँ जिसने कहा था कि वह सिसेरो की समीक्षा बिना प्रतिबन्ध के इसलिये कर सकता है कि उसने उसको पढ़ा नहीं !

बस अजे हम उठ गए। मेज से उठने के पहले हमें एक-एक तौलिये का टुकड़ा मिला, जिससे भाफ, निकल रही थी और जो जूही से बसे पानी में डिबोया हुआ था। उसका इस्तेमाल ओठ और मुँह पोछने में होता है। भीनी सुगन्ध गमक उठी और माँस की गन्ध, फूलों की गन्ध तक, उससे दब गई। इस प्रकार की कोई चीज और कहीं न देखी थी।

पहले भी अपने कमरे में जा चुका था पर सैर के आकर्षण ने मुझे उसे भली-भाँति देखने न दिया था। उसे मैंने अब देखा। कुशादा कमरा, जिसकी खिड़कियाँ हवा में खुलती थीं। दीवार के पास की मेज पर बड़ा थर्मस गर्म पानी से भरा, ठंडे पानी की एक बोतल और छोटी ट्रे में रखी सुन्दर सासर और प्यालियाँ। पलंग और सोफ़ा के बीच की मेज

पर कुछ केले, सेब और आड़ू। पलंग से लगी छोटी अल्मारीनुमा मेज़ पर छायादार बिजली का लैम्प। कमरे में एक ओर स्प्रिंगदार सोफ़ा और उसकी कुर्सियों के बीच एक नीची मेज़। उस पर सिगरेटों के दो पैकेट रखे हैं और एक दियासलाई ऐशट्रे में खोसी हुई है। साथ ही एक धातु की छोटी प्लेट में कुछ मिठाइयाँ और टाफ़ी हैं। गुस्लख़ाने में लम्बा गहरा चिकना नहाने का टब है, कमोड, आईने, दाँत का ब्रुश, पेस्ट, तेल भरी शीशी, ग्लिसरिन, वेसलिन और क्रीम की शीशियाँ, कंघा, नहाने और मुँह पोछने के तौलिये—हर चीज़ चीन की बनी।

पलंग के पास माँड़ी लगे सूत के स्लीपर रखे थे और उनमें जब मैंने जूते से अकड़े हुए पांव डाले तो बड़ा आराम मिला। सोने के कपड़े बदल कर बिस्तर में जा घुसा। बत्ती जलती ही छोड़ दी। बिस्तर निहायत आरामदेह था और दिन की दौड़-धूप से राहत के लिए सोना ज़रूरी था। किसी प्रकार की चिन्ता मन में न थी और बिस्तर पर पड़ते ही सो जाना स्वाभाविक था। पर नींद लगी नहीं। रोशनी बुझा दी, वह हरी वाली भी जिसका प्रकाश नहीं के बराबर था। आँख बन्द कर सोने का आभास पैदा करने लगा, परन्तु सफल न हो सका। फिर भी चुपचाप पड़ा रहा, साँस की आवाज़ तक अपने को भी नहीं सुन पड़ने दी। इसका एक कारण था। अगर बिस्तर पर जाते ही सो नहीं जाऊँ तो एक मुसीबत उठ खड़ी होती है। उसी मुसीबत का डर था और वह डर सही हो गया। मेरा उन्निद्र लौट पड़ा। चुपचाप पड़ा रहा। बग़ैर सोए, पूरा जगा हुआ सपने देखने लगा। अन्दर से जगा या बाहर से सोया क्योंकि बाहरी जगत् का कोई बोध तब मुझे न था। कमरे में घना अन्धकार और उसमें मन के पट पर जागते-दौड़ते चित्र।

पुराने चीन की बात सोच रहा था। सामन्ती-साम्राज्ञी चीन की, जब धनी का शब्द ही कानून था, जब धनी चाहे तो हवा बहा सकता था, चाहे तो पानी बरसा सकता था। उसके बराबर व्याघ्र हिंस्र न था, भेड़िया धूर्त न था।

वह उस पत्नी या पत्नियों का स्वामी था जो उसके लम्बे-चौड़े हरम की अनगिनत रखैलों से भिन्न थी। फिर भी उसकी कामुकता की कोई सीमा न थी और उसके हरम के अतिरिक्त अनेक होटल थे जो उसकी घिनौनी लिप्सा को पूरी करने में उसकी मदद करते।

और जब इस प्रकार मैं पुराने चीन के होटलों की बात सोच रहा था तब मुझे एकाएक अपने पलंग का भी ख्याल आया। मैं उस अंधेरे में कांप उठा। कौन जाने ? पर वे जानते हैं। हाँ, सुमन, वे सचमुच जानते हैं। क्योंकि उस ओर किसी ने कही कुछ इशारा किया था। और सहसा हँसती, रोती और क्रूर तस्वीरें मेरी आँखों पर छागईं। लम्बा गाउन, छोटी जाकेट, हाथ में छड़ी। चहल कदमी करते होटल मे दाखिल होना और यहा के नौकरों-मातहतों की जेबें गरम कर देना। छोटी बच्चियाँ, जो अभी सही औरत भी न हो पाईं, माँ के स्तन से खींच ली जाती हैं या सीधी खरीद ली जाती हैं। घिनौने कामुक के आदमी राह में जगह-जगह अड़े हैं। उनके हाथों में लोगों को बाँधने के लिए रस्सियाँ हैं, घाव करने के लिए छुरे हैं। भयानक जीव आलस भरा चुपचाप पड़ा अफ़ीम का धुआँ उड़ाए जा रहा है। वह प्रवेश करती है और वह तब अपना पाइप किनारे धर देता है। वह कुछ देर ना-नू करती है, बेबसी और लाचारी का इजहार करती है, डर कर कांप-कांप जाती है और आखीर आत्म-समर्पण कर देती है। कामान्ध पशु सोचहीन हो कौमार्य को कुचल देता है और कानून के रक्षक घिनौने अट्टहास करने लगते है। सारे देवता चुपचाप देखते रहते हैं, बगैर पलक गिराये क्योंकि देवताओं के पलकें नहीं होतीं। हर दूसरे-तीसरे घटना दुहरा दी जाती और कुँआरपन के चेहरे से शर्म धीरे-धीरे गायब हो जाती। अब वह औरत नहीं है। लाल रेशम का कोट पहनती है, हरी किमख्वाब का पाजामा, अफ़ीम का धुआँ उड़ाती है। अब वह वेश्या है जो पास से गुजरने वालों की घिनौनी कामुकता के लिए अपने द्वार खुले रखती है, नीच के सामने सिर झुका देती है। पाप उसके भीतर पक चलता है और

धीरे-धीरे वह निहायत बेशर्मी से वासना की अमर्यादित अधिकाई से अलसाए अपनी आंख के डोरों की ओर इशारा करती है, रात के बचे अपने ओठों की ओर, रूखे हाथों में दिये अपने बालों की ओर, अपने कुचले नारीत्व की ओर। उसकी तंग छाती में विपुल शंघाई अब तक खड़ा हो चुका है !

हाँ, यह होटल और कौन जाने स्वयं यही पलंग ? निश्चय विचार घिनौने थे और उस अँधेरे में उन विचारों से लड़ता मैं सपनों की परिधि से बाहर हो चला। परन्तु अभी उस परिवर्तन को समझ भी न पाया था कि अचानक नींद लग गई। उस ऊँचे पलँग के आरामदेह बिस्तर पर गहरी नींद सोया। जागा तड़के, गो सोया देर में था। मेरे लिए चार घंटों की नींद बड़ी न्यामत है, मुँह माँगा वरदान और तीन बजे जब नींद खुली तो बेशक शिकायत की कोई वजह न थी।

सात बज चुके हैं। विश्वास नहीं होता कि साढ़े तीन घंटे लगातार लिखता रहा हूँ। आँखें खोलीं तो कुछ अजब-सा लगा और कुछ देर चुप-चाप बिस्तर पर ही पड़ा रहा। सन्नाटा छाया था। लगता था जैसे उस सन्नाटे पर अँधेरे की मोटी काली परतें चढ़ा दी गई हैं। और तब मुझे तुम्हारी याद आई, बच्चों की और तुम्हारी भली बीबी शान्ति जी की। फिर मन इधर-उधर भटकता एक ऐसी याद पर जा टिका जिसे मेरा दावा है, तुम बूझ नहीं सकते। उस घटना का सम्बन्ध तुम्हारे स्वर्गीय दादा से है। तुम्हें याद होगा जब वह एक बार गाँव से शहर आए थे और तांगे में बैठकर तुम्हारे साथ ही घर पहुँचे थे। ताँगे वाले को तुमने भाड़े के छः आने दे दिये थे। तुम खुद तो घर के अन्दर आ गये थे पर दादा ताँगे पर ही बैठे रहे। कुछ देर बाद तुम्हें उनकी सुधि आई। तुमने उन्हे घर में नहीं पाया। उन्हें देखने जो तुम बाहर निकले तो देखा वे ताँगे में जैसे-के-तैसे जमे बैठे हैं। ताँगा वाला झगड़ रहा था और बुजुर्ग चुप बैठे जमाने की बेशर्मी पर लानत भेज रहे थे। तुमने उन्हें मनाया, हाथ जोड़े, पर उन्होंने कुछ सुना नहीं, हिले तक नहीं। और जब तुमने

झल्ला कर उनके उस आचरण का प्रतिवाद किया तब वे बोले—"छः आने में तो मै अपने खेत पर आदमी से सारा दिन काम कराता हूँ। मै इस उचक्के का इस तरह धोखा देना बर्दाश्त नहीं कर सकता। यहाँ से हिलूंगा नहीं और न इस बदमाश को हिलने दूंगा। शाम तक मेरे छः आने वसूल हो जायेंगे, क्योंकि तब तक मैं यहां जमा रहूँगा और यह धूर्त बेकार रहेगा।" मै कहता हूँ सुमन, कि तुम्हारे दादा के उस बदले के सामने हम्मुराबी की सारी व्यवस्था को काठ मार जाय! खैर, मेरी खुमारी अब तक दूर हो चुकी थी। मैंने कलम उठा ली और तुम्हें लिखने बैठ गया।

अभी लिख ही रहा था कि किसी ने आकर बताया कि जहाज नौ बजे चल पड़ेगा और हवाई अड्डे को ले जाने के लिए सारा सामान तत्काल दे देना पड़ेगा। गरज का सारा सामान अपने साथ ही जायगा। पिछली रात हमें मय सामान के यह देखने के लिए तोला गया था कि वजन कहीं हद से बाहर तो नहीं है। जाहिर है कि बोझ ज्यादा नहीं था, कम-से-कम इतना ज्यादा नहीं कि डर हो जाय। मुझे जल्दी करनी होगी। अभी गुस्लखाने जाना है और फ़ारिग हो नीचे बैठक मे। जिससे बगैर किसी को इन्तजार कराए जहाज और आज की डाक दोनों समय से पा सकूँ।

तुम सब को प्यार,

स्नेही
भगवत शरण

डा० शिवमंगलसिंह 'सुमन',
माधव कालिज,
उज्जैन (मध्य भारत)

पीकिंग,
२२—६—५२

पद्मा,

मैं पीकिंग में हूँ। हम यहाँ कल शाम पाँच बजे पहुँचे।

प्रभात सुहावना था, परन्तु कान्तोन के अतिथि भवन से निकलते-निकलते वातावरण कुछ गरम हो चला था। सड़कें जिनसे होकर हमारी गाड़ियां चुपचाप गुजरीं, शान्त थीं। कहीं किसी किस्म का शोर न था यद्यपि लोग घरों से सड़कों पर निकल आए थे और उनका दैनिक आचरण प्रायः आरम्भ हो चुका था। नगरवर्ती देहात सुन्दर था, खुला और हरे खेतों भरा। उन्हीं ऋद्ध खेतों के बीच, पहिचाने नामहीन जंगली फूलों के बीच, फैले देहात में हमारी कारें दौड़ चलीं।

फैले मैदान में असीम आकाश के चंदोवे तले विशाल हवाई अड्डा। इमारत सादी, भीतर आरामदेह, गद्दीदार कुर्सियों से मण्डित। मेजें चीनी, अंग्रेजी, रूसी और चेक पत्रिकाओं से भरी। दीवारों पर टंगे हुए बड़े-बड़े नक्शे और मानचित्र। एक के सामने जा खड़ा हुआ। स्पष्ट रेखाओं में हवाई अड्डों और बड़े-बड़े नगरों के निशान बने थे। चीन आने-जाने के साधनों में प्रायः कंगाल है। विशेष एयर लाइनें नहीं, न हवाई रास्ते हैं। शायद इधर यह अकेला हवाई रास्ता है और वह भी हांकाऊ और कान्तोन के बीच नहीं चलता। उसकी दौड़ केवल हांकाऊ और पीकिंग के बीच है। चीन में रेलवे भी बहुत नहीं है और जो है भी उनमें से अधिकतर वर्तमान सरकार की बनाई है।

ताज्जुब होता है कि आखिर विदेशी शक्तियां चीन में करती क्या रही हैं? फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेज और अमेरिकन, जो पिछली सदी के अन्त

और वर्तमान के आरम्भ में चीन के इतिहास में इस क़दर हावी थे, वे करते क्या रहे ? हवाई रास्ते नहीं, रेलें नहीं, सड़कें नहीं। माओ की सरकार को चीन के विदेशी मित्रों और स्वदेशी देशभक्तों द्वारा यही नकारात्मक दाय मिली !

हँसी की फुलझड़ी ! देखा, डाक्टर किचलू चीनी मित्रों से घिरे हुए हैं और हँसी के फुहारे छूट रहे हैं। फिर वही बेबस कर देने वाली रोज़मर्रा की मेहमानदारी—शराब, चाय, फलों का रस। जहाज़ की ओर बढ़े, जहां प्रसन्न मुस्कराती लड़कियां खड़ी थीं। उन्होंने हाथ मिलाए, हमें अपने गुलदस्ते भेंट किए। मित्रों से विदा लेकर और उन्हें उनकी अकृत्रिम सहृदयता के लिए धन्यवाद करते हम अपनी सीटों की ओर बढ़े। तालियां बजती रहीं और जहाज़ के ज़मीन से उठ जाने के बाद भी हमने अपनी विदा मे उठे बुलाते हाथो को खिड़कियो से देखा।

प्लेन कंकड़ीली ज़मीन पर, कुटी कंकरीट और घास से ढकी राह पर दौड़ चला। फिर पक्षी की नाईं अपने पंख तोलता हल्के से ऊपर उठा। तरुण, सुन्दर होस्टेस (जहाज़ की मेजबान लड़की) ने खुली मुस्कराहट द्वारा हमारा स्वागत किया, कानों के लिए रुई के टुकड़े दिए, चीनी टाफ़ी बांटी और चाय-काफ़ी के लिए पूछा, फिर पत्रिकाएं लिए हमारे पास पहुँची और यात्रा का समय काटने के लिए उन्हें लेने का इसरार किया। पूछा, किसी को हवाई बीमारी तो नहीं होती ? दवा तो नहीं चाहिए ? पच्छिम में काफ़ी जहाज़ी सफ़र किया था, किसी प्रकार की तकलीफ़ नहीं हुई थी, मैंने मना कर दिया। पर कुछ को उसकी ज़रूरत थी। एक-आध कुछ देर बाद अस्वस्थ भी हो चले। भोपाल के राम पंजवानी को कुछ परेशानी हुई, और शायद मेहता को भी। बाकी सब आराम से थे।

शीघ्र हम बिखरे बादलों के ऊपर उठ गए। जहाज़ उत्तर की ओर भागा। गहरा नीला आकाश कुछ श्वेताभ हो चला था। गर्मी बढ़

गई थी मगर ऐसी दमघोटू भी नहीं थी। धीरे-धीरे फिर वह कम होने लगी। जैसे-जैसे हम ऊपर उठते गए, हवा के सुराखों से सर-सर कर आने वाली हवा से उस छोटे जहाज का अन्तर सुखद शीतल हो गया।

लोहू और कान्तोन के बीच पहाड़ी कन्दराओं में कटीं मृतक-समाधियां यात्री को जो अपने आकार और अपरिमित संख्या से चकित कर देती हैं, उनका विस्तार इधर भी बहुत है। वे धीरे-धीरे आंखों से ओझल हो गईं। हम पहाड़ों और घाटियों के ऊपर, फैले मैदानों और जंगलों के ऊपर जिनके बीच पानी की रुपहली धाराएं चमक रही थीं, और जुते-बोए खेतों के ऊपर उड़ चले। हरी फसल झूम-झूम कर जैसे हमें बुला रही थी और जब-जब हमारा जहाज नीचे उतरता—उनकी छटा देखते ही बनती थी। चीनी किसान ने खाड़ी के गहरे तल से लेकर पहाड़ की चोटी तक जमीन का चप्पा-चप्पा जोत डाला है और भूमि को फाड़कर उसमे अपने श्रम का फल बरबस ले लिया है। वस्तुतः यह देखकर बड़ी शान्ति मिली, सन्तोष हुआ कि आखिर इस दुखी दुनिया में भी स्थल ऐसे हैं जहां मनुष्य ने अपने श्रम का पुरस्कार पाया है और जहाँ बैठकर वह असन्दिग्ध मन से उसे काटने की प्रतीक्षा करता है जो उसने बोया है, उस पकी फ़सल को काटने की जिसे उसने अंकुर से प्रौढ़ किया है और हवा-पानी के प्रति जिसकी एक-एक प्रतिक्रिया से वह वाकिफ़ है।

दुपहर होते-होते हम यांग्त्सी पार कर हूपे प्रान्त के बड़े नगर हांकाऊ में पहुंच गए। हमने इस बीच क्वांतुङ्ग और हुनान दो प्रान्त पार कर लिए थे, और अब हम हूपे में थे। यांग्त्सी चिपटे प्रदेश में अपनी अनेक धाराओं से बहती है। हम नदी और नगर के ऊपर इस पार से उस पार उतरने के पहिले देर तक मँडराते रहे। नीचे स्वागत का बड़ा समारोह दिखाई पड़ा। कई हजार लड़के और लड़कियां हवाई अड्डे के मैदान में खड़े थे। उनके अतिरिक्त शान्ति-सभा और अन्य

विविध संस्थाओं के कार्यकर्ता और प्रतिनिधि भी थे। सर्वथा श्वेत पोशाक पहिने और गले में अपनी विशिष्ट लाल पट्टी डाले तरुण 'पायोनियरों' की कतारें अत्यन्त आकर्षक लगती थीं। चीनी छात्र कितने स्वस्थ, कितने ताजे लगते हैं, खिले तारुण्य के अनुपम आदर्श इतनी शक्ति, इतनी सादगी, इतना खुला भोलापन—चीन का नितान्त निजी !

तरुण पायोनियरों की पहली कतार, जो हाथ में गुलदस्ते लिए थी, हमें भेंटने आगे बढ़ी। तालियाँ लगातार बज रही थीं। तालियों का बजना सम्भवतः हमारे जहाज के उतरने से पहले ही शुरू हो गया था जो हमारे उड़ जाने के बाद बन्द हुआ। गुलदस्ते लेते हुए हमने अपने नवायु मित्रों को धन्यवाद दिए, उनसे दो बातें कीं। हाँ, बातें कीं, समान भाषा न बोलने वाले दो जनों में भी बात हो सकती है, क्योंकि एक बड़ी ऊँची जुबान का, जिसका सम्बन्ध हृदय से होता है, वे इस्तेमाल कर लेते हैं। उस जुबान में लफ़्ज़ तो नहीं होते पर शरीर के रोम-रोम से वह फूटी पड़ती है, और जीभ को व्यर्थ कर देती है। ऐसे अवसरों पर शब्द जड़ हो जाते हैं, भावों के वहन में नितान्त असमर्थ और उनका स्थान चेष्टाएं ले लेती हैं। रग-रग तब जैसे गीतमान हो उठती है, रोम-रोम पुलक उठता है, कण-कण आनन्द से थिरक उठता है; केवल जिह्वा गूँगी हो जाती है, जब तब बोलने का असफल प्रयास करती है—और अन्त में शब्दहीन।

जहाँ जाना था वह स्थान हवाई स्टेशन के बिल्कुल पास ही था, फर्लांग भर भी नहीं, परन्तु जनता के मेहमान पैदल नहीं लेजाए जा सकते थे। हमें गाड़ियों में बैठकर ही जाना पड़ा। भोजन राजसी था, शायद इसलिए विशेषतः कि हम लंच भी वहीं कर रहे थे। मैंने बहुत कम खाया, कुछ फल ले लिए और सन्तरे के रस से बड़ी शान्ति मिली। दो शब्द उन्होंने हमारे स्वागत में कहे, दो हमारे नेता ने उनके उत्तर में। सादे, सार्थक शब्द। और तब हम जहाज की ओर लौटे। कुछ मिनट

मिलना-मिलाना हुआ, नारे लगे, फिर शुभकामनाओं का प्रकाशन हुआ, शुभकामनाएँ जो पहाड़ों से कहीं ऊँची थीं, आकाश से कहीं व्यापक, जिन्होंने हमसे ऊपर उठकर जहाज की अशिव से रक्षा की।

मैं वह दृश्य भूल नहीं सकता, पद्मा, वह शालीन विदा-कार्य। लगा, जैसे मन की कोई शिरा वहीं रह गई है, जैसे हमारा कुछ छूटा जा रहा है, और उनका कुछ जैसे हम अपने भीतर लिए जा रहे हैं। जिन्हें हम पहले कभी नहीं मिले, जिनसे हमें आगे कभी मिलने की सम्भावना नहीं, पर लोग ऐसे गोया हम उन्हें सदा से जानते रहे हैं, ऐसे जिन्हे हम कभी भूल नहीं सकते। पद्मा, क्या कारण कि लड़कियों के दल के दल सहसा उन जनों के अभाव से रो पड़ें जिनको उन्होंने कभी न देखा, कभी न जाना? और फिर इसका क्या कारण कि आयु से प्रौढ़ और मन के पक्के मर्द सहसा जैसे टूट जायें, उन्हे अपने आँसू छिपाने पड़ें? शायद इस कारण कि उनकी जाति समान है, उनके प्राण समान हैं, उनके आवेग समान हैं, मानव और मानवीय।

यह विदा निस्सन्देह तत्वतः जनानी थी, चीनी नारीत्व का आभास लिए। और चीनी नारीत्व, वह तो कुछ ऐसा है कि लगता है बाकी दुनिया से भागकर उसने चीनी नारी की भवों के नीचे शरण ली है। हम आकाश मार्ग से उड़े जा रहे थे परन्तु पृथ्वी का वह मानवीय औदार्य आकाश से और ऊँचे उठकर हमारे ऊपर छाया था। वह सपना फिर तब टूटा जब हमारा जहाज चीनी जनतन्त्र के महानगर पीकिंग पर, उसके झीलों, मैदानों पर, महलों, वितानों पर उड़ने लगा, और जब लाल पट्टे पहले बच्चों का एक दूसरा दल नीचे से हमारी ओर अपने गुलदस्ते हवा में हिलाने लगा।

नौ घण्टे में डेढ़ हजार मील उड़कर पीकिंग पहुँच जाना कुछ कम न था। अनेक बड़े लोग जहाजी अड्डे पर हमें लेने आए थे। झट हम नीचे उतरे। केमरों की खट्-खट् हुई, गुलदस्ते भेंट मिले, भारत, बर्मा और लंका के मित्रों ने चीनी दोस्तों के बीच हमारा स्वागत किया।

उन्हीं में कुमुदिनी मेहता भी थीं। हवा सूखी बह रही थी, घनी शीतल, हलकी सर्द। फिर उस प्राचीन नगर के बीच हमारे बसों का दौड़ पड़ना जिसकी ऊँची भूरी दीवारों को अनेक बार शत्रुओं ने जीता और तोड़ा था, अनेक बार जिन्हें लांघने में वे असफल रहे थे। उन्हीं दीवारों में बने अनेक ऊँचे द्वारों में से यह था जिसके भीतर से हम पीकिंग होटल की ओर भागे, जहाँ दुनिया के कोने-कोने से शाँति के लड़ाके इकट्ठे हो रहे थे।

दीवारें, दीवारें, दीवारें! पीकिंग दीवारों का नगर है। नगर के बीच से चाहे जिधर मीलों निकल जाओ पर इस विशाल परकोटे की भूरी भुजाएँ तुम्हें अपने वेष्टन में घेरे ही रहेंगी। इन दीवारों के पीछे सुरक्षा का अनायास भाव मन में उतर आता है। संभवतः कभी उन्होंने इतिहास के मध्यकाल में नगर के निवासियों को उन दुश्मन रिसालों के विरुद्ध संरक्षा प्रदान की थी जो निरन्तर रक्त और लूट के नाम पर दौड़ते रहते थे। कुछ लोगों ने सन्देह भी किया है कि क्या सचमुच यह प्राचीरें महान् सेनाओं की गति रोक सकी होंगी? जरूसलेम, दिल्ली, पीकिंग सभी ने उनके प्रति समय-समय पर आत्म-समर्पण कर दिया जिनके सामने न तो फैले-सूखे रेगिस्तान ही कोई रुकावट थे, न बर्फीले ऊँचे पहाड़ ही।

पीकिंग विशाल गढ़ है, शहरपनाह से घिरा पुराना किला, प्रायः मूलरूप में तभी का बसा जब की हमारी दिल्ली है और दिल्ली की भाँति ही उसका इतिहास भी शालीन और भयानक रहा है, क्रूर और लोम-हर्षक। दीवारें कितनी ही बार लांघ ली गईं, तोड़ दी गईं, नगर कितनी ही बार जीत लिया गया, अग्नि की लपटों में डाल दिया गया। कुछ उसे लूटने और मसलने आए, कुछ उसकी ऊँची दीवारों के साये में पनाह और बसेरा लेने, कुछ उसके प्रासाद और कलश बनाने। प्रत्येक विपत्ति के बाद दीवारों की शक्ल बदल गई। घर फिर से खड़े हो गए। नगर ने कलेवर बदला, नया नाम धारण किया।

वेनिस का यात्री मार्कोपोलो, जिसका घर मैं दो साल पहले देख आया था, तेरहवीं सदी में चीन गया था और उसने समकालीन पीकिंग का अपने भ्रमण-वृत्तान्त में वर्णन किया—२४ मील का घेरा, प्रत्येक भुजा छः मील लम्बी, बारह ऊँचे द्वार, प्रत्येक दिशा में तीन-तीन और हर द्वार के ऊपर खुशनुमा महल, वैसे ही दोनों कोणों में एक-एक, जिससे सन्तरी सेना के हथियार वहाँ रखे जा सकें। पीकिंग की आज की दीवारें मिंग वंश के पहले दो सम्राटों की बनवाई हैं, पिता-पुत्र की, पन्द्रहवीं सदी की। मंचुओं के तातार नगर की सड़कों से ५० फीट ऊँची यह दीवारें सिर उठाए खड़ी हैं, नीचे साठ फीट मोटी, सिरे पर चालीस फीट, और उनमें ९ द्वार हैं, प्रत्येक सिर से एक भव्य प्रासाद उठाए। उत्तर के नगरों का राजा यह महान् दुर्ग पीकिंग अपने चतुर्दिक घेरने वाली जल से भरी खाई में निरन्तर अपने कलश-कंगूरे कभी चमकाता रहता था। आज उसकी दीवारें सूनी हैं यद्यपि उनका दर्शन अशिव नहीं लगता।

प्राचीन पीकिंग की उन बार-बार बनी दीवारों के पीछे चार-चार नगर बसे हैं—उत्तर में तातारों या मंचुओं का नगर, दक्खिन में हानों का प्राचीन चीनी नगर, मंचू आबादी के बीच फिर साम्राज्य का केन्द्र तीसरा नगर और चौथा इन सब का अन्तरंग और इतिहास में बदनाम 'अवरुद्ध-नगर'—फारबिडन सीटी—कभी का सम्राट् और उसके दरबार का आवास। इन चारों नगरों की अपनी-अपनी हर्ष-विषाद की कहानी है। उनके परकोटों की एक-एक ईंट ने हमले देखे हैं, करुण विलाप सुने हैं। वही अब युद्ध के शत्रुओं शांति के निर्माताओं की भीष्म प्रतिज्ञा सुनेंगे।

पीकिंग होटल कई मंजिलों की ऊँची इमारत है जो पहले अमरीकी व्यवस्था में था। वर्तमान संसार की प्रायः सारी सुविधाएँ वहाँ प्राप्त हैं। संसार के शान्ति प्रेमी जनता के प्रतिनिधि वहीं ठहराये गए हैं। सोवियत, मंगोलिया, जापान, कोरिया, हिन्दुस्तान और इण्डोनेशिया के प्रतिनिधि वहीं हैं। डॉक्टर अलीम को और मुझे एक ही कमरा मिला, काफ़ी बड़ा और कुशादा।

तुम्हें मेरे भोजन के सम्बन्ध में कुछ चिन्ता होगी। पर ना, चिन्ता की कोई बात है नहीं। सही है कि मैं चीनी भोजन नहीं खा सकता और मेरा आहार निरामिष खाद्यों तक ही सीमित है फिर भी मुझे भूखा नहीं रहना पड़ता। फलों की भरमार है—सेब, नाशपाती, नाख, आड़ू, केले, अंगूर—वही जो, तुम जानती हो, मुझे बहुत रुचता है, बाँस की कोंपल, गुच्छियाँ (मशरूम) और चीनी रसोई की अनेक अन्य चीजें उपलब्ध हैं। कई तरह के चावल मिल जाते हैं और उन्हें जैसा चाहें बनवा लेना महज मामूली बात है। शाकाहारियों की संख्या भी कुछ कम नहीं है और उनमें अनेक ऐसे भी हैं जो अपने घरों में मांस नित्य खाते हैं। चीनी आतिथ्य गज़ब का उदार है। उसने हर स्थिति का अटकल लगा लिया है और असामान्य से असामान्य आवश्यकताएँ भी पूरी करने को वह उद्यत है। उस सम्बन्ध में कुछ चिन्ता न करना।

शान्ति-सम्मेलन के लिए हिन्दुस्तान से आनेवालों में हमारा दल दूसरा था। पहला कई दिन हुए पहुँच गया था। कमरे में सामान वग़ैरह जँचा कर कुछ मिनट के लिए हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि चाय पर मिले। वहीं डाक्टर जे० के० बनर्जी से अचानक मुलाकात हो गई। मेरे पुराने मित्र हैं। हम दोनों लखनऊ के कैनिंग कॉलेज में एक साथ थे। जर्मनी और फ्रान्स में प्रायः सत्रह साल रह चुके हैं। अंकिल नानू (ए० सी० नम्बियर) के मित्र हैं और उनके साथ ही हिटलर के कैदी रह चुके हैं। किसी ने बताया था कि कोई जे० के० भी आए हुए हैं पर मैं तब समझ न सका था कि जे० के० बीनू ही हैं। मैं इन्हें घर के बीनू नाम से विशेष जानता था और वहाँ मिलना अप्रत्याशित होने के कारण मैं सही-सही समझ न पाया था। परन्तु जैसे ही हमने एक-दूसरे को देखा परस्पर दौड़ कर मिले। तीस साल बाद हम मिले थे, बहुत कुछ कहना-सुनना था, पर उस वक्त उपस्थित कार्य-क्रम की बात सोच दोनों चुप रह गए। विशेष कुछ करना न था, आगे के प्रोग्राम के निस्बत कुछ तय करना था। फिर कमरों में आराम के लिए लौट जाना था।

कुछ देर बाद हम बाहर निकले। कुछ तो थके होने के कारण अपने कमरों में चले गए, कुछ होटल की बैठक में जाकर खड़े-बैठे उन मित्रों से बात करने लगे जो वहीं इन्हें एकाएक मिल गए थे। बीनू, मैं, डाक्टर अलीम और कुछ दूसरे साथी टहलने के लिए होटल से बाहर चल दिये, तीएनानमेन के बड़े मैदान की ओर, जो पास ही था।

साँझ बड़ी सुहावनी थी। शीतल हवा धीरे-धीरे चल रही थी, हल्की तीखी, पर ऐसी नहीं जो बुरी लगे। पीकिंग में गर्मियाँ खत्म हो चुकी थीं और जाड़ा धीरे-धीरे शुरू हो रहा था। मने आते ही गरम कपड़े पहिन लिए थे, गरम कोट तो जहाज में ही पहने हुए था। चौड़ी सड़क प्रकाश से चमक रही थी। लोग फुट-पाथ पर चले जा रहे थे, कुछ तेज, कुछ चहलकदमी करते। बसें, ट्राम गाड़ियाँ और मोटरें साधारण गति से आ-जा रही थीं। हमने भी टहलना ही पसन्द किया और पैदल निरुद्देश्य इधर-उधर की बातें करते चल पड़े। अलीम साहब बीनू को जर्मनी से ही जानते थे और बंगाल के डेलिगेट जो हमारे साथ निकले थे बड़े खुशमिजाज थे।

हम तिएनानमेन (स्वर्गीय शान्ति का द्वार) के सामने उस मैदान की ओर बढ़े जहाँ सन् ४९ से इधर अनेक महान् घटनाएँ घटी हैं। वहीं सैन्य-निरीक्षण भी हुआ करता है और राष्ट्रीय दिवस का समारोह भी। यशस्वी मैदान लोगों से भरा था। उसके बीच की सड़क पर सब प्रकार की गाड़ियाँ—पुराने रिक्शों से लेकर आधुनिक से आधुनिक माडल की गाड़ियाँ तक थीं। रिक्शे अब पहले की-सी इज्जत तो नहीं पाते पर उनका रोजगार अब भी कुछ कम नहीं। उनको बराबर दौड़ते देखा। निजी मोटरों के हट जाने से रिक्शों की जरूरत चीन में बढ़ भी गई है। भीड़ कुछ बहुत नहीं थी। सादे चीनी लोग दिन के काम के बाद हवा खाने निकल पड़े थे। कुछ दफ्तरों से देर में लौटे थे, कुछ मित्रों के यहाँ से, कुछ तेजी से कदम उठाए जा रहे थे। लड़के और लड़कियाँ, जहाँ वे अकेले न थे, आराम से चहलकदमी कर रहे थे, खेलते-

हँसते। कहीं बुखार की तेजी न थी, बौखलाई भागदौड़ न थी। न्यूयार्क याद आया जहाँ कि तेजी की बस कुछ न पूछो। लोग किसी अदृश्य यंत्र से संचालित प्राणियों की तरह चुपचाप एक गति से, गति की एक रफ्तार से, निरन्तर चलते रहते हैं, जैसे कहीं आग लगी हो।

पहली अक्तूबर के लिए मैदान सज रहा है। पहली अक्तूबर चीनी जनतन्त्र का राष्ट्रीय-दिवस है। लाल रंग विशेष दृष्टिगत है। उसीसे खम्भे ढके हैं, इमारतों के द्वार सजे हैं, स्तम्भों के शिखर भी। जहाँ कहीं मेहराब या द्वार हैं वहां उनमें तीन-तीन, पाँच-पांच की संख्या में छोटे-बड़े अत्यन्त आकर्षक झब्बेदार चटकीले लाल गुब्बारे लटक रहे हैं। इन गुब्बारों से त्योहारों पर इमारतों को सजाना यहाँ आम बात है। इस वक्त भी सफाई जारी है और फुटपाथों पर जो लोग काम कर रहे हैं उनकी खिलखिलाहट से जाहिर है कि काम में उनका मन लगा हुआ है।

हम रुककर उन्हें देखने लगे। उन्होंने भी हमारी ओर देखा, क्षण भर देखते रहे फिर आपस में कुछ बातें कीं और हमारी ओर नजर कर मुस्करा दिया, सिर हिला दिया। हम भी उनकी ओर देखते मुस्कराते धीरे-धीरे आगे बढ़गये। कुछ दूर चलकर जो मुड़कर मैंने देखा तो उन्हें अपने काम में लगा पाया।

पास के बड़े फाटक से भीड़ निकली आ रही थी, पर आकुलहीन भीड़ नहीं। लोग दो-दो, चार-चार की कतार में हँसते-निकलते चले आ रहे थे। किसी ने बताया कि वे मजदूर हैं, संस्कृति-सदन से तमाशा देखकर लौट रहे हैं। चीन के सभी नगरों में अपने-अपने संस्कृति-सदन हैं जहाँ नाटक और ओप्रा होते रहते हैं, पढ़ने-लिखने, खेलने का सामान रखा रहता है। हम कुछ देर खड़े उन्हें देखते रहे फिर उन्हीं में मिलकर आगे बढ़े। कुछ देर बाद होटल को लौट पड़े।

स्वागत--भोज का समय हो गया था। अनेक मेजें लगी थीं। एक शुद्ध शाकाहारियों के लिए भी थी। मेजबानों ने टोस्ट का प्रस्ताव

किया, मधुर शब्दों में भारत और चीन की प्राचीन मैत्री की ओर संकेत किया। डाक्टर किचलू ने समुचित उत्तर दिया। चीनी डिनर शुरू हुआ। हल्की आवाजें, किलकारियाँ और दबी खिलखिलाहट, बार-बार झुकते सिर, मुस्कराते चेहरे।

रात बड़ी छोटी लगी। दिन की लम्बी उड़ान और शाम की हवा-खोरी के बाद गहरी नींद सोया। आज उठते ही तुम्हारी याद आई, लिखने बैठ गया, घर खत लिख चुका हूँ और आशा करता हूँ कि तुम लोग अपने खत एक-दूसरे से बदलकर यहाँ की हर बात जान लेती होगी। डाक्टर अलीम उठ चुके हैं और मुझे भी झट तैयार हो जाना है। हमारा दल पेई-हाई, उत्तर सागर का पार्क, देखने जा रहा है। पेई-हाई राजकीय शीत-प्रासाद है।

स्नेह और आशीर्वाद।

तुम्हारा,
भइया

कुमारी पद्मा उपाध्याय,
प्रिन्सपल, आर्यकन्या पाठशाला
इन्टर कालेज,
खुर्जा, उत्तर प्रदेश।

पीकिंग,
२३-६-५२

प्रिय देवव्रत,

पीकिंग से लिख रहा हूँ, करीब पाँच हजार मील दूर से। यह दूरी हवा की राह है, समुन्दर की राह और लम्बी है। परसों शाम ही यहाँ पहुँच गया था, पर अभी तक कमरे में जम न सका। शायद जम कभी न सकूँगा। दिन इधर-उधर फिरने, दर्शनीय और ऐतिहासिक स्थान देखने में गुजर जाता है—उनको इस महानगर में भरमार है; शाम बैठकों, भोजों और थिएटर आदि देखने में खत्म हो जाती है; रात बहुत छोटी लगती है, वास्तव में रुचि और जिज्ञासा के दण्डस्वरूप जो दिन में दौड़-धूप होती है उसके सामने रात बड़ी छोटी हो ही जाती है, मिनटों में बीत जाती है। दो दिन पहले जो चीज जहाँ डाल दी थी वह आज भी वहीं पड़ी है। शायद यहाँ से चलते वक्त जब तक उन्हें बक्स में न डाल लूँगा वहीं पड़ी रहेंगी।

कल पेई-हाई देखने गए। पेई-हाई का अर्थ है 'उत्तर समुद्र का पार्क।' प्रभात शीतल था पर जैसे-जैसे दिन चढ़ा वातावरण गरम होने लगा। पीकिंग का सूरज कभी बर्दाश्त से अधिक गरम नहीं होता, कम-से-कम साल के इस हिस्से में नहीं। लगता है उस महान् ज्योतिर्बिम्ब की शालीनता से अपना हिस्सा लेकर माओ ने उसकी गर्मी कुछ कम कर दी है। कालिदास ने लिखा है कि प्रबल पाण्ड्यों की ओर दक्षिण यात्रा करते समय सूर्य तेजहत हो जाता था। नये चीन के निर्माता का तेज पाण्ड्यों से कुछ कम नहीं और कुछ अजब नहीं कि आकाश के उस अग्नि-पिंड का बहिरंग माओ के निवास पीकिंग पर चमकते समय कुछ अप्रतिभ हो जाता हो।

पेई-हाई के एक-पर-एक बिछे पार्कों की ऊंचाई चढ़ते गर्मी बढ़ चली है। फिर भी इलाहाबाद की गर्मी, पिघला देने वाली गर्मी, यहाँ नहीं है। पेई-हाई पीकिंग के सुन्दरतम स्थानों में है। जितना ही उसे प्रकृति ने सँवारा है उतना ही मनुष्य ने। प्रकृति ने पर्वती आधार के रूप में जो कुछ उसे प्रदान किया है उसके मस्तक पर मनुष्य ने जैसे ताज रख दिया है। जगह मुझे बहुत भाती है। कलासम्बन्धी मेरी कमजोरी तुम जानते हो। इधर हाल में वह कमजोरी और बढ़ गई है। विद्याव्यसनी हूँ, साहित्यिक और ऐतिहासिक अध्ययन में मन रम जाता है। कला ने तरुणाई में ही आकृष्ट किया था, यद्यपि साहित्य का मोह बराबर अधिक रहा। पर जैसे-जैसे उम्र बढ़ती जाती है, जैसे-जैसे अवकाश में कमी होती जाती है, आंशिक विषय में भी अप-टु-डेट होने की सम्भावना मरीचिका बनती जा रही है और ढेर-की-ढेर पोथियाँ पढ़कर विद्वान् कहलाने का घमण्ड चरितार्थ होने लगा है, वस्तुतः तब छपी सामग्री देख जी उकता उठता है, मन में उसे देख एक सदमा-सा छा जाता है और तब कला की मूक कृतियों का आकर्षण कितना सुखद प्रतीत होता है। जीवन की सारी कुरुचि, सारी परुषता, उन कृतियों के दर्शन से नष्ट हो जाती है, उनका प्रकाश चेतनता के अंतरंग को आलोकित कर देता है। पेई-हाई जाना जैसे फल गया।

यह राजधानी का सुन्दरतम आमोद-उद्यान है। सदियों यह सम्राटों का एकान्त प्रमदवन रहा था। आज उसका सौन्दर्य अवरुद्ध नहीं, सार्वजनिक उपभोग की वस्तु है। उसके फाटक सर्वसाधारण के लिए खुल गए हैं। नाम मात्र को शुल्क लगता है और उस शुल्क का रेट ऐसा कि सुनो तो मुस्करा दो क्योंकि वह शुल्क कद की छोटाई-ऊँचाई के मुताबिक कमबेश लगता है। हम सभी की ऊँचाई क़ायदे की थी, मझोली, जिससे हम, जैसा किसी ने कहा, तोरण-द्वार से प्रवेश कर सकें।

फैले झील में पार्क का सारा जिस्म और ऊँचा मस्तक प्रतिबिम्बित होता रहता है। इसी मन्द समीर से हल्की लहराती जलराशि के तट पर

छः लम्बी सदियों के दौरान में महान् सम्राटों ने क्रीड़ा की है और चीन के युद्धपतियों को आमोद और व्यसन का पाठ पढ़ाया है, उनके लिये विलास की मंजिलें खड़ी की हैं। वहाँ हम उस सम्मोहक पहाड़ी पर नीचे-ऊपर फिरते रहे जहाँ के कण-कण में युग के भेद भरे हैं, क्रूर और कामुक।

झील का नाम उचित ही उत्तर-सागर पड़ा है। उसके तट पर अनेक वन्य निकुंज हैं। सारा तट पेड़ों के झुरमुटों से ढका है। तट पर कमल का हाशिया-सा बन गया है। अकेली कलियाँ फैली पद्म-सम्पदा के ऊपर कमल नालों पर मस्ती से झूम रही हैं। दृश्य अभिराम है, सामने का विस्तार आकर्षक, निदाघ का समीर मादक।

हम पेई-हाई में पीछे से दाखिल हुए थे, नगर की ओर से चट्टानी ज़मीन पर। पुल पारकर दीर्घिकाओं की ओर बढ़े। उनमें रंग-बिरंगी नयनाभिराम छोटी मछलियाँ थीं। फिर निर्जन लकड़ी के द्वार से होकर निकले, द्वार जिन पर पुराने रंग आज भी चमक रहे थे—सुनहरे, नीले, लाल, हरे। मंज़िल-पर-मंज़िल मारते हम चढ़ चले, ऊपर चोटी की ओर। प्रकृति सम्मोहक न होती तो निश्चय चढ़ाई खल जाती। बीच-बीच में एक-एक पेड़ों की छाया में दम ले-ले हम ढाल की राह बढ़े। डा० अलीम ने एक छड़ी खरीदी। जाडू की लकड़ी-सी लगती थी वह, वहीं की हवा में पली। उसके गोल मुँह पर अक्षर खुदे थे—'पेई-हाई'। थी तो वह यादगार, पर शौकीन डाक्टर के लिये उस चढ़ाई पर वह खासी सहारा साबित हुई। वैसे डाक्टर कभी चढ़ने के लिये छड़ी न खरीदते।

चक्करदार राह से हम जंगली झाड़ियों में घुसे। दूर ऊँचे, एक-पर-एक चढ़ी चमकती रंगीन छतें मंदिरों और प्रासादों के मस्तक पर छाई, और उन सब से ऊपर, सब पर अपनी छाया डालता, अपने शीर्ष-शूल द्वारा आकाश का नील मंडप भेदता वह पाईता का सफेद दगोबा। 'स्वर्णगिरि' का वह वस्तुतः मुकुट है।

यह इमारत १६५२ में पुराने खंडहरों के आधार पर खड़ी हुई, उस तिब्बती शासक की यादगार में जो दलाई लामा का अभिषेक कराने आया था। इससे चीन पर तिब्बत की ऐतिहासिक निर्भरता भी प्रमाणित है। मध्यकाल से ही दलाई लामा पहाड़ लाँघ, रेगिस्तान पार की यात्रा कर चीन की बराबर बदलती राजधानी पीकिंग या नानकिंग पहुँचते थे, अभिषिक्त होकर शासन की बागडोर धारण करते थे। यह स्तूप उन्हीं अभिषेकों में से एक का स्मारक है।

हम पीकिंग नगर के ऊपर स्वच्छन्द हवा में खड़े हैं, आकाश के चँदोवे तले, उसकी नीली गहराइयों में खोए। बाईं ओर आवासों का वह विस्तार है जो स्मृति-पटल से कभी मिट नहीं सकता—पीली दीवारों से घिरे, कतार पर कतार उठती दूर तक फैली चमकीली पीली खपड़ैलों की छतों से ढके साम्राज्य, प्रासाद, मन्दिर और विमानावृत भवन—मन्चु सम्राटों का विख्यात 'अवरुद्ध नगर।' सामन्तीगढ़ ! भेद भरा, भयावह !

'स्वर्ण द्वीप' नगर के पुल द्वारा जुड़ा हुआ है। पर हम उससे न जाकर नावों से चले। पास की इमारत के छज्जे पर पी हुई चाय ने रोमैन्टिक चेतना जगा दी थी और पानी की सतह पर हिलती हुई नावों पर हम जा बैठे, जिनके स्पर्श से झील काँप रही थी।

सामने समतल भूमि पर साम्राज्य के उपवनों की परम्परा है। दृश्य सूना लगता है जैसे उसके चेहरे पर इन्सान की बनैली चोटों ने गहरे घाव कर दिये हों। बनैले इन्सान ने दरअसल उस पर गहरे घाव कर दिये थे। ब्रिटिश, फ्रेंच और जर्मन शक्तियों एक बार बुलन्द इमारतों को नष्ट कर देने को ललकार दी गई थी, जिन्हें मिटा न सकने के कारण जमाने ने आने वाली पीढ़ियों को विरासत में दे दिया था। संसार को सभ्य बनाने वाले इन्सानियत के यह दुश्मन अत्तिला और तमूर को सभ्यताओं का विध्वंसक घोषित करते हैं। आकर देखें उन्होंने क्या कर दिया है। हवा में तोपों की गरज की गूँज है। खंडहरों में

बर्बादी की आवाज़ पुकार रही है। ज़मीन की फटी छाती आदमी के स्पर्श से जैसे काँप रही है।

एक छोटे टीले के पीछे सुन्दर छोटी पोर्स्लेन की दीवार है, वस्तुतः दीवार का केवल इतना हिस्सा इन्सान के बर्बरपन से बच रहा है। उसकी ज़मीन पर अनेक रंगीन अज़दहे बने हुए हैं, ऊँचे उत्कीर्ण, हरी लहरों के बीच नीली चट्टानों पर फिसलते, कुंडली भरते, विकराल फनों को हवा में हिलाते, खेलते—कला की अनोखी कृति। अज़दहों का विशाल आकार उनकी शक्ति का परिचायक था। अज़दहे चीनी परम्परा में भूमि और उपज के देवता हैं, अकाल के शत्रु। दीवार पुरानी है पर इसकी टाइलों के हरे, सुनहले और नीले रंग ज़माने की रवानी को जैसे मंजूर नहीं करते, आज भी चमक रहे हैं। दीवार, लगती है, जैसे आज की ही बनी हो। केवल मनुष्य की दुःशीलता ने उसे नष्ट करने में कुछ उठा नहीं रखा है।

हममें से अनेक इन्सान के इस शर्मनाक कारनामे को देख तड़प उठे। मैं विशेषकर। जानते हो इन्सान के हथौड़े से टूटे रत्नराशियों का कभी संरक्षक रह चुका हूँ।

हमारी बसें तट घूमकर आ गई थीं। प्रतीक्षा में खड़ी थीं। पेई-हाई की हमने कुछ तस्वीरें खरीदीं और होटल लौट पड़े। लंच इन्तज़ार कर रहा था।

चीन के लिये जब कलकत्ते से रवाना हुआ था तुम घर पर न थे। पहाड़ों की छाया में बसा टोरी इतना गरम न होगा, कुछ शीतल हो रहा होगा। दुलहिन और बेबी अच्छे थे, मुझे छोड़ने स्टेशन भी आये थे।

स्नेह, आशीर्वाद।

तुम्हारा,
भइया

श्री देवव्रत उपाध्याय,
टोरी, जिला पालमू,
छोटा नागपुर, बिहार।

पीकिंग,
२४-६-५२

प्रियवर टंडन जी,

जब से आया लगातार पुराने खंडहरों में घूम रहा हूं, ऐतिहासिक भग्नावशेषों और खड़ी इमारतों में। महान् निर्माता थे वे पुराने। हमारे अपने ही कितने महान् थे!

वे जिन्होंने ताज खड़ा किया, अजन्ता और एलोरा की गुफ़ाएं काटीं और उनकी सूखी दीवारों को दर्पणवत चिकनाकर उन पर अभिराम चित्र लिखे। फिर वे जिन्होंने पिरामिड बनाए, सिकन्दरिया का आलोक-स्तम्भ बनाया, रोड्स् का कोलोसस।

चीन प्राचीन भवनों की शालीनता में असीम समृद्ध है और पीकिंग उस समृद्धि का केन्द्र है, उस शिल्प का प्रधान पीठ, चुना हुआ स्थल। कितना देखना है यहां—पीकिंग की दीवारें, ग्रीष्म और शीत-प्रासाद, पोर्स्लेन पगोडा, राष्ट्रीय वेधशाला, अवरुद्धनगर और उसके विशाल तोरण-द्वार, आखेट पार्क-पगोडा, थ्येन् (आसमान) का मंदिर और नगर से कुछ ही घंटों की यात्रा की दूरी पर वह अद्भुत चीनी दीवार। थ्येन् का मंदिर पीकिंग की शालीन इमारतों में है। आज वहीं जाना निश्चित किया। शान्ति-सम्मेलन के भारतीय प्रतिनिधियों की संख्या नित्यप्रति बढ़ती जा रही है। आज सुबह दो बसों में हम सब मंदिर पहुंचे। तिए-नान मेन के सामने के मैदान से सड़क सीधी मंदिर के उपवनों की ओर जाती है। हमारी बसें मंदिर के प्लैटफ़ार्म के ठीक नीचे सीढ़ियों के पास रुकीं। प्रशस्त प्लैटफ़ार्म पर फ़ौज की एक टुकड़ी परेड कर रही थी। हमारे दोनों ओर कूटी-बनाई जमीन पर स्कन्धावार बने थे। शिविरों

की कतारें दूर तक दोनों ओर चली गई थीं। स्पष्टतः सेना वहाँ पड़ाव डाले पड़ी थी।

ताली और स्वागत। मुस्कराहट और अभिवादन। ताली लगातार बजती जा रही है, उसकी ध्वनि पेड़ों में गूँज रही है। यह सैनिक हैं जो शिविरों में सफ़ाई कर रहे हैं, भोजन बना रहे हैं, आराम कर रहे हैं। नाटे, पीले, गठे, फुर्तीले सिपाही। वे हमें जानते हैं। शान्ति-सम्मेलन और उसके प्रतिनिधियों को सारा चीन जानता है। हम ताली बजाकर, अपनी हैट उठाकर प्रत्यभिवादन करते हैं। वे सरककर हमारे पास आ जाते हैं और शब्दों द्वारा अपने उल्लास का प्रदर्शन करते हैं। शब्द हम समझ नहीं पाते पर उनकी उदार अभिव्यक्ति का बोध भला किसे न हो सकता था? छिटकी चाँदनी सी मुस्कराहट। हँसती हुई तरल आँखें। छोटे क़दों में आकाश-के-से व्यापक हृदय।

सामने प्लटफ़ार्म दूर तक उत्तर-दक्खिन फैला हुआ है सोपान-मार्ग से हम ऊपर चढ़ते हैं। दूर दोनों ओर विशाल फाटक हैं। चौस् का मंदिर तीन शालीन इमारतों का सुन्दर समूह है, दो ऊँची इमारतें जो आकाश के नीले चँदोवे को बेध रही हैं, और तीसरी चौस् की संगमरमर की बलिवेदी जो अपना चौड़ा वक्ष उघाड़े आकाश के नीचे नंगी पड़ी है। तीनों नगर से दूर पूर्व में हैं। तीनों खुले में खड़ी हैं, तीनों का निर्माण १४२० में शक्तिमान् सम्राट् युंग ली ने कराया था। युंग ली मिंगों में दूसरा था, संसार के महत्तम निर्माताओं में से एक।

तीन असाधारण इमारतें। तीनों का समवेत उद्देश्य, पर तीनों का व्यक्तित्व पृथक्। आकाश के महान् देवता की उपासना के स्थल। इनके निर्माण में प्रच्छन्न शक्तियाँ प्रविष्ट हुईं। आकाश का प्रतीक होने के कारण गुंबद का रंग नीला होना स्वाभाविक था। प्रकाश का उद्गम होने के कारण पूर्व की ओर उनका बनना भी स्वाभाविक था। मन्दिर जितना ही विशाल है उसका प्रशस्त प्रांगण उतना ही प्रभावशाली। उसका ऊँचा गोला आकार कल्पना को वशीभूत कर लेता है। इस्लाम

के महान् निर्माताओं ने—सारासेनों, मुग़लों और अवध के नवाबों ने—लगता है अपने पूर्ववर्ती इन चीनी निर्माताओं के फैले आँगनों के शिल्प का जादू चुरा लिया था। इनकी मस्जिदों, मक़बरों, इमामबाड़ों में घेरी हुई खुली ज़मीन इसका साक्षी है।

'सुखी साल का मंदिर' अपनी संगमरमर की तेहरी बेदी पर खड़ा है। थ्यौस् की तीनों इमारतों में सबसे शालीन, उच्चतम। प्राचीनकाल के पुरोहित-राजाओं की भाँति अपनी प्रजा के प्रतिनिधि के रूप में केवल सम्राट् थ्यौस की बलिवेदी पर बलि चढ़ाता था। बीच का वह भवन इस अद्भुत समूह का केन्द्र है। इसके विशाल किवाड़ों के पीछे प्रजा के जनक और पवित्र थ्यौस के महान् पुत्रों को समर्पित देवतुल्य पट्टिकाएँ रखी हैं। वर्तुलाकार भवन अपनी संगमरमर की वेदिकाओं से चमक रहा है। उसकी जाली सुन्दर सादगी लिये हुए शान्त खड़ी है, ऊँची गहरी उस छत की छाया में जिसका मस्तक चमकती नीली खपड़ैलों से मंडित है। चमकती धूप में जब आकाश की नीलिमा ताम्राभ हो जाती है तब इन खपड़ैलों का राज देखिये। बरसती सूरज की किरणों को अपने कण-कण पर रोपती खपड़ैलें नज़र पर छा जाती हैं। फिर उनका तेज आँखें नहीं निहार पातीं।

फैले आँगन मेरे अनजाने न थे। देश के इमामबाड़े और मक़बरे मेरे देखे थे और दक्खिन भारत और उड़ीसा के वे मंदिर भी जिनकी विमान-भूमि अपने आवर्त में जैसे आसमान लपेटे हुए हैं। मुझ पर जिसका गहरा प्रभाव पड़ा वह वास्तव में दीवारें न थीं और न इमारतों की ऊँचाई ही, बल्कि उनके मूक मस्तक, और एक के ऊपर एक चढ़ी रंग-बिरंगी लकड़ी की खपड़ैली छाजन। ऊँचाई का बोझ जो एक प्रकार से मन पर हावी हो जाता है, उसे उनका अभिराम आकर्षण हल्का कर देता है। नेत्रों में जैसे उनका कमनीय लोच तरंगित हो उठता है। चीनी इमारतों की यह छतें हल्की लहर के आकार में बनी भी होती हैं। उनका मस्तक सुकुमार भावना का जैसे प्रतीक है जिसे गाँव की

स्वच्छन्द वायु परसकर देहात की ताजगी तो प्रदान करती है पर उसकी नागर अभिजातीयता को ग्राम्य नहीं बना पाती।

क्या ही भव्य इमारत है। बाहरी आँगन तीन मील दौड़ती लम्बी दीवारों से घिरा है। भीतरी आँगन की परिधि १२ हजार फुट है। दीवारें बलिवेदी के गिर्द वर्गाकार पवित्र पट्टिकाओं के मंदिर के गिर्द वृत्ताकार। फिर भंडारों को घेरने वाली दीवारें, बलिगृह के चतुर्दिक दीवारें। बाहरी आँगन में दो विशाल द्वार हैं, भीतरी में चार। प्रत्येक द्वार के अपने-अपने नाम हैं। नाम इतने शालीन कि ऊँचे आकाश को छू लें। वस्तुतः पीकिंग की सारी इमारतें और उनके द्वार, वैसे पीकिंग ही क्यों सारे चीन की भी, अपने-अपने नाम से विख्यात हैं, नाम जो सदा 'शान्ति का' बोध कराते हैं और आकाश की अनन्तता का। आकाश का कम, शान्ति का अधिक। इससे एक बार तो हमें सन्देह भी हुआ कि यह नाम इनके शान्ति-सम्मेलन के उपलक्ष में तो नहीं रख दिये गये। परन्तु हमारा सन्देह निराधार था। नाम पुराने थे, सदियों पुराने, जितने स्वयं उन्हें धारण करने वाले यह भव्य भवन। इसी प्रकार धान के मंदिर के भीतरी आँगन के द्वारों के भी अपने-अपने नाम थे। जो पूर्व में है उसका नाम है 'विश्व सृष्टि का द्वार', दक्षिण के दरवाजे का अनुवेधक 'प्रकाश का द्वार', पश्चिम का 'महान् उदारता का द्वार' और उत्तर के दरवाजे का 'पूर्ण भक्ति का द्वार'। नामों में जिन आचारों की संज्ञा निहित है वे स्वच्छतः पार्थिव हैं, दैनिक जीवन में आचरित होने वाले।

यह सारे भवन ठोस संगमरमर के आधार पर खड़े हैं। उनके द्वार लाल और विशाल हैं जिनकी जमीन पर नौ-नौ कतारों में हथेली भर देने वाली बड़ी-बड़ी पीतल की कीलें हैं और जिनके ऊपर चमकती खपरैलों वाली तंग छतों की छाया है। धूप में इन भवनों का समूह एक-साथ चमक उठता है। गोलाकार बलिवेदी पर छाया नहीं है। वहाँ उस पर न तो खपड़ैलें हैं, न द्वार, न खिड़कियाँ। केवल सोपानमार्ग, मंच-

मंच उठती वेदियों के बराबर। संगमरमर की सफेदी में लिपटी, दोहरी दीवारों से घिरी पूजा की यह वेदियां संसार की धूल-मिट्टी से सर्वथा सुरक्षित है। संसार की दृष्टि से दुरित, पर आकाश के नीचे इतनी खुली कि उसकी कोमलतम साँस उनको चूम ले, दूर से दूर का लघु से लघु तारा जिससे उन्हें अपने आलोक से छू ले।

वृत्ताकार सुन्दर मन्दिर की दीवारों के भीतर भीड़ की आंखों से छायाओं की मूकता में साँस लेती एक पट्टिका जड़ी है। वह देवत्व की सबसे पवित्र प्रतिमा है, चीन की असंख्य जनता की पूज्य, परन्तु उसे चीन की जनता ने कभी न पूजा, अथवा जिसे पूजने का कभी उसे अधिकार न मिला। व्योम के देवत्व की प्रतीक 'शांग ती' पट्टिका नौ सीढ़ियों के तराशे संगमरमर के ऊँचे गोल आधार पर खड़ी है। आधार की नौ सीढ़ियां स्वर्ग के नौ लोकों की प्रतीक हैं जो हाथीदांत जड़ें कटी झिलमिली से छिपे आधार को उठाये हुए हैं। उनके ऊपर नौ सीढ़ियाँ लकड़ी की हैं। वह भी मोटे पीतल की जड़ाई की हैं जो सिंहासन के आधार तक जा पहुँचती हैं। वहीं एक छोटा-सा द्वार है जिसके पीछे वह पवित्र सन्दूक है जिसमें पवित्रतम अभिलेख सुरक्षित हैं। खोजती आंखों से दूर छिपी, फ़ीरोज़ी चमकती ज़मीन पर चमकते सोने के उभरे अक्षर जिन्हें सिवा कुछ पुरोहितों और सम्राटों के किसी ने न देखा।

पूर्वी आकाश की चोटी छूता चमकता नीला गुंबद दूर से ही दृष्टि आकृष्ट करता है। एक के ऊपर एक चढ़ी संगमरमर की वेदिकाओं पर बना 'सुखी साल का मन्दिर' ९९ फुट ऊँचा है। उसके मस्तक की छत तेहरी है, नीली खपरैलों से मंडित सोने की चाँदनी से ढकी है। शिल्प का वह अद्भुत विस्तार! ऊँचे स्तंभ, जैसे कहीं न देखे, इमारत की बुलन्दी जैसे सिर से उठाए हुए। हैं वे महज़ लकड़ी के, पर डोरियन, कोरंथियन, आयोनियन स्तंभों से कहीं अभिराम, संगमरमर से कहीं शालीन। जड़े हुए चार विशाल स्तंभ ऊपरी छत को टेके हुए हैं, और १२ लाल खंभे, जो अकेले पेड़ों के तने हैं, निचली छतों को उठाए हुए हैं। सीढ़ियों

को ज़मीन पर तो अज़दहों की आकृतियाँ उभरी ही हुई है, उधर ऊपर छत के खानों में भी उनकी आकृतियाँ कुंडली भरती जैसे सरक रही है। लगता है नीचे के अजदहे ऊपर पहुँच गए है और उनके फन फुफकार-फुफकार मानो हवा पी रहे हैं। चीन के विश्वास में चाहे इनका स्थान कल्याणकर ही क्यों न हो, इन्हे देखकर हमारे मन में शिव-कल्पना के बजाय त्रास का संचार हो आता है। ऊपर के खाने अपने चमकते रंगों से तो रोशन है ही सुनहरी लकीरें भी उन पर अपना कान्ति बिखेर रही है। खिड़कियों की जाली मनोरम है। सुन्दर लाल विशाल किवाड़ पीतल के चमकते मोटे कब्जों पर अटके हुए है और उनके सामने की ज़मीन सुनहरी कीलों से समूची मंडित है।

'दक्षिण वेदी', तिएन तान, संगमरमर की तीन वर्तुलाकार वेदियाँ हैं। उसकी आधार वेदी २१० फुट, बीच की १५० फुट और ऊपर की ९० फुट चौड़ी है। प्रत्येक वेदी सुन्दर कटी रेलिंग से घिरी हुई है। ऊपरली वेदी ज़मीन से १८ फुट ऊँची है और संगमरमर की पट्टियों से ढकी है। पट्टियो की पंक्तियाँ नौ है और नवों समान-केन्द्रीय हैं। सब से अन्दर वाली नौ पट्टियाँ बीच की एक पट्टी को घेरे हुए है जिसे यहाँ के पुराण-पंथी विश्व का केन्द्र-विन्दु मानते हैं। पूर्वजों और आकाश की पूजा करता हुआ सम्राट् ऊपरी वेदी की इसी केन्द्रीय पट्टिका पर घुटने टेकता था।

टंडन जी, पुरातत्त्व के प्रति मेरे आकर्षण या कमज़ोरी ने यह विवरण कुछ इतना सविस्तर कर दिया है कि मुझे डर है, कहीं यह पत्र नीरस न हो जाय, यद्यपि जानता हूँ कि ऐसे विषयों पर लिखते समय स्वयं आप विस्तार को कितना महत्व देते है। जो भी हो, मैं अपने पत्र के पुरातात्विक वर्णन से स्वयं कुछ घबडा उठा हूँ। इसलिये अब केवल उस बलिक्रिया का वर्णन करूँगा जो सम्राट् ह्वाँस् की वेदी पर किया करता था। मेरा विश्वास है वह इतना नीरस न होगा।

सम्राट् अवरुद्ध नगर के अपने प्रासाद से १६ कहारों की वैदूर्य की

पालकी पर निकलता था। जलूस में रंगों का बेशुमार प्रदर्शन होता। भड़कीले वस्त्रों में सजे सवार खोजे यज्ञ का सामान लिये चलते। फिर चीते की दुम धारण करने वाले रक्षकों की सेना चलती। बाद सकुन रंग की साटन की वर्दी पहने राजकीय सईस। तिकोने मखमली झंडों पर अजदहों की शक्ल बनी होती और उन्हें ले चलने वाले स्वयं असिल संख्या में होते। धनुष-बाण लिये घुड़सवारों की कतार अपनी पीली काठी से दूर से ही पहचानी जा सकती थी। नितान्त सन्नाटा छाया रहता। उस मृत्यु सरीखी चुप्पी के बीच सम्राट् का जलूस चुपचाप अलक्ष्य बढ़ता जाता। उस चुपचाप सरकते जलूस पर किसी को एक नजर डालने का भी अधिकार न था। जलूस की राह में खुलने वाली सारी खिड़कियाँ बन्द कर दी जातीं और गलियों के मोड़ नीले पर्दों से ढक दिये जाते। लोगों को बाहर निकलने का हुक्म न था, सबों को घरों के भीतर बन्द रहना पड़ता। सम्राट् उस सन्नाटे में चमकती हरी खप-ड़ैलों के नीचे सरों की हल्की मरमराहट सुनता चुपचाप उषा-पूर्व के उस भेद-भरे पल की प्रतीक्षा में खड़ा रहता जब उसके पुरखों की आत्माएँ मँडराती बलि के लिये प्रवेश करतीं। युंग लो और कोआंग हँसी अथवा चिएन लुंग के-से साम्राज्य-निर्माता चुपचाप वहाँ खड़े सोचते, विचारते, संकल्प करते, प्रार्थना करते रहते जहाँ केवल लम्बी-ठण्डी रात्रि की स्तब्धता और स्वयं अपनी चेतना उनकी सहायक होती। उस रात से दो दिन पहले से वे व्रत रखते और मन को सारे बाहरी विषयों से खींच कर देवता के प्रति लगाने का प्रयास करते। इस प्रकार चित्त-वृत्ति का निरोध कर वे पाप और हृदय की दुर्बलताओं को दबाने का प्रयत्न करते जिससे उस पुण्य पल में आकाश की आत्मा और उसके पुरखे अपना आशीर्वाद अपनी सन्तान को दे सके। यह बलि आकाश की आत्मा को हर गर्मी और सर्दी में दी जाती थी। यज्ञ का समय सूर्योदय के पहले नियत होता था जब रात का अन्धेरा चराचर पर छाया होता और ब्राह्म-मुहूर्त की शीतल वायु मन्द-मन्द बहती होती। तभी पवित्र पट्टिकाओं का

जलूस निकलता। पट्टिकाएं लाई जातीं।

फिर पुरोहित गंभीर ध्वनि मे खड़े लोगों को आदेश करता—'गायको और नर्तको, मंत्रोच्चारको और पुरोहितो, सब अपने कर्त्तव्य करो।' तब शान्ति की ऋचा गम्भीर स्वर में सहसा गूँज उठती। यह लिखते मुझे स्वयं यजुर्वेद का शान्ति-प्रसंग स्मरण हो आया है—'द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतय. शान्ति-विश्वदेवाः शान्तिब्रह्म शान्तिः सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि।'

शान्ति के ऋचा-पाठ के बाद नगाड़ों की ध्वनि के साथ बजते बीसों वाद्य-स्वरों के बीच सम्राट् उच्चतम वेदी पर धीरे-धीरे चढ़ जाता जहाँ विश्व की आत्मा उसे ऊपर से घूरती। ८१ बार क्रिया के बीच वह घुटने टेकता। पूजा निःसन्देह कठिन थी।

जब हम आँगन से निकलकर बाहर चले तो प्लैटफार्म पर परेड करते फौजियों ने सैल्यूट किया। उनके चेहरों से जाहिर था कि हमें देख कर वे प्रसन्न हो उठे हैं। उन्होंने तालियां बजाईं। उनकी पद-ध्वनि बड़ी प्रभावशाली लगती थी। वे राष्ट्रीय दिवस पहली अक्तूबर के लिये तैयार हो रहे थे।

जब हम अपनी बसों की ओर बढ़े तो शिविरों के सैनिकों ने पास पहुँच कर हमें घेर लिया। हमसे हाथ मिलाने लगे, गले मिलने लगे। उनको मालम था, हम सब से कहीं अधिक कि लड़ाई का मतलब क्या होता है। इसी से उन्होंने हम शान्ति के प्रतिनिधियों का विशेष स्वागत किया। उनका स्वागत स्वीकार करने, उन्हें बधाई देते, हम बसों में बैठ गए और होटल आ पहुँचे।

टंडन जी, मैं अति प्राचीन और अति अर्वाचीन के अपने इस घेरे में बड़ा प्रसन्न हूँ। मेरा यह विश्वास है कि केवल वही प्राचीन की रक्षा कर सकते हैं जो नवीन का निर्माण करते हैं। पुराकाल में प्राचीन का निर्माण स्वयं तब के नवीन का निर्माण था। चीनी इस बात को जानते

है। वे दोनों कर रहे हैं, पुराने की रक्षा भी, नये का निर्माण भी।

रात काफ़ी जा चुकी है। देर से लिख रहा हूँ। खुली खिड़की के पास खुले मुँह, यद्यपि कमरे के अन्दर बैठा हूँ। रात की नम्र हवा ठंडी वह रही है। पर नम हवा भी आखिर पीकिंग की रात की है, सर्द। और जैसे-जैसे रात बढ़ती जा रही है हवा की सर्दी भी बढ़ती जा रही है। आधी रात की नमी मेरे अन्तस्तल में गहरी चुभ रही है। लिखना बन्द कर अब बिस्तर की ओर रुख करता हूँ। आप और श्रीमती टंडन को प्रणाम। सितारे को प्यार।

आपका ही,
भगवत शरण

श्री रामचन्द्र टंडन,
हिन्दुस्तानी एकेडेमी,
कमला नेहरू रोड,
इलाहाबाद

पीकिंग,
२५-९-५२

प्रिय नागर,

अपराधी हूँ, एक जमाने से तुम्हें लिखा नहीं। चीन आने के पहले ही खत लिखने वाला था, पर व्यस्त होने के कारण लिख न सका। हजार कोशिश की पर समय न मिला। और आज हजारों मील दूर पीकिंग से लिख रहा हूँ। यकीन है, देर के लिये बुरा न मानोगे।

पीकिंग पहली अक्तूबर की तैयारियों में लगा है। तैयारियाँ शान्ति-सम्मेलन के लिये भी बड़े जोर से हो रही हैं। एशिया और दोनों अमेरिकों के अधिकतर देशों से प्रतिनिधि पहुँच गए हैं। कुछ आज पहुँच रहे हैं। उनकी एक बड़ी तादाद अब तक चीन पहुँच चुकी है और पीकिंग की राह में है। कुछ प्रतिनिधियों को मौसम खराब होने से प्राग और मास्को रुक जाना पड़ा है। कोहरा छँटा कि वे उड़े। अनेक यूरोपियन, जो प्रतिनिधि नहीं हैं, राजधानी में हैं। वे मित्र-राष्ट्रों के प्रतिनिधियों के रूप में पहली अक्तूबर के जलसे में शामिल होने आए हैं। विदेशियों के अतिरिक्त चीन की उन अल्पमतीय जातियों के प्रतिनिधि भी यहाँ हैं जिन्हें सरकार विशेष यत्न से सुखी करती है। वे भी उसी राष्ट्रीय दिवस की प्रतीक्षा में हैं। उनके रंग-बिरंगे लिबास मन को बरबस खींच लेते हैं।

शान्ति-सम्मेलन पूर्व निश्चित तिथि पर कल नहीं आरम्भ हो रहा है। किसी ने सुझाया कि इस प्रकार के सम्मेलन का आरम्भ हमारे गांधी के जन्मदिन, दूसरी अक्तूबर को होना चाहिये। सुझाव के पंख लग गए, डेलीगेशन से डेलीगेशन वह उड़ चला। दिवस, जो ऐसे राजनीतिक मनीषी के जन्म से पुनीत हो चुका हो, जो शान्ति के लिये ही जिया

शान्ति के लिये ही मरा, निश्चय ऐसे अवसर के लिये ग्राह्य था। सभी प्रतिनिधि-मंडलों ने अनुकूल स्वीकृति दे दी। संसार की जनता गांधी को कितना प्यार करती है। नागर, उसके अमन के उसूलों की कितनी क़ायल है! आज २५ है और कल २६, और दूसरी अक्तूबर है हफ़्ते भर बाद। बड़ी अहम् बात है, नागर, हफ़्ते भर कान्फ़ेन्स को टाल देना। हफ़्ता भर रुक रहना कुछ आसान नहीं, न उनके लिये जो हज़ारों मील चलकर यहाँ पहुँचते हैं और न उन्हीं के लिये जो इतने आलम का आतिथ्य करते हैं। बाहर से आनेवालों का तो लमहा-लमहा अमोल है और उनका हफ़्ते भर रुक जाना अमन और हिन्दुस्तान के प्रति उनका असीम उत्साह और आदर प्रगट करता है। काश हिन्दुस्तान के हमारे भाई इस राज़ को समझ पाते! पर मुझे डर है कि जो तथाकथित जनतांत्रिक जगत् के समाचार-वितरण की एजन्सियाँ 'कन्ट्रोल' करते हैं वे इस प्रकार की ख़बर को कहीं छपने न देंगे और यह भारतीय दृष्टिकोण की विजय अन्धकार में ही पड़ी रह जायगी। पर आवाज़ है कि कब्र की छाती फाड़ पुकार उठती है, नूर है कि सौ स्याह परतों को छेद जाता है।

गरज़ यह कि मुझे चीन और उसके बाशिन्दों को देखने-जानने को एक हफ़्ता और मिल गया। और इस मौके का मैं यक़ीनन सही इस्तेमाल करूँगा। शान्ति-समिति स्वयं बेकार नहीं बैठी है, रोज़ बरोज़ नई-पुरानी जगहें दिखाने का इन्तज़ाम करती है। हम आज ही प्रसिद्ध चीन की महान् दीवार देखने गए थे। नीचे उसका एक ब्योरा देता हूँ, यक़ीन है पसन्द आएगा।

सुबह आठ बजे ही तैयार हो गया था। दीवार देखने जाने वालों से बैठक भर गई थी। हम में से अधिकतर के लिये यह ज़िन्दगी का मौका था, क्योंकि चीनी दीवार, तुम जानते हो आख़िर तुम्हारे लखनऊ की हज़रतगंज की सड़क नहीं, जहाँ तुम जब चाहो अपनी 'संवैधानिक चहल-क़दमी' (कान्स्टीट्युशनल वाक) कर लेते हो। रेलवे प्लैटफ़ार्म भी उसी तरह दुनिया की प्रायः सारी जातियों के प्रतिनिधियों से भरा

था। हवा में चुहल भरी थी, हँसी के फव्वारे फूट रहे थे। बधाइयाँ, स्वागत के शब्द, कान में कहे स्नेह भरे शब्द अनजानी जबानों में अनसुने मुहावरों से हवा में लहरा रहे थे। कितनी तरह की ज़बानें, इसका तुम अटकल नहीं लगा सकते। आवाजें प्यार से बोझिल, पर ऐसी कि कोई भाषा-शास्त्री उनका वर्गीकरण न कर सके। हाँ, पर नासमझ को भी अपने भाव से भर देने वाली। पूरब और पच्छिम का सही सम्मिलन।

नई, बिल्कुल माडर्न, स्पेशल ट्रेन हमें देहात पार ले चली। पीकिंग की विशाल भूरी दीवारों के साए में हम चले, बार-बार दीवारें दूर खो जातीं, बार-बार उनके परकोटे सिर पर किले उठाए हमारे ऊपर छा जाते। हाथ बढ़ाते उंगलियाँ उन्हें छू लेतीं। ट्रेन हरे-भरे मैदानों के बीच हमें ले चली। काओलिआग के हिलते हरे खेतों के बीच, पुराने सरहदी शहर नानकाऊ के परे, उधर चिंह-ली की पहाड़ियों में उसने हमें ला उतारा।

महान् दीवार दूर के क्षितिज को चूमती पहाड़ों के सिरों पर फिरती, प्रकृति के मस्तक पर पहनी माला की तरह लग रही है। दैत्य की-सी उसकी पाहरु-बुर्जियाँ, दैत्य के-से उसके दौड़ते परकोटे—अ"स्त कड़ियों की अनन्त शृंखला! दीवारें जो देश के प्राचीन सन्तरी रही हैं, पहाड़ों के ऊपर अद्भुत सुन्दर आकाश-रेखा बना रही हैं। तुर्क, हूण, खीतान, नूचेन, मंगोल और बर्बर—किसने समय-समय पर इन पहरुओं को लाँघने का प्रयत्न नहीं किया? किसने जब-तब इसके परकोटे जहाँ-तहाँ न भेद दिये? जब-तब बुर्जियों के पहरों के बावजूद भी बर्बर काम-याब हो गए। और वही 'जब-तब' की बर्बर सफलताएँ चीन का अभाग्य बन गईं, उसके पैरों की फ़ौलादी बेड़ियाँ।

एक बार मैंने इस चीनी दीवार पर भी कुछ लिखा था। तुमने मेरी हाल की किताब 'बुर्जियों के पीछे' तो पढ़ी ही होगी। याद है, तुम्हे उसकी एक प्रति भेजी थी। उसी में चीनी दीवार भी थी। पर तब

मैंने उस पर दूर से लिखा था और वह दूरी जमाने और ज़मीन दोनों की थी। आज उसकी चोटी पर चढ़कर मैं दोनों को लांघ रहा हूँ—जमाने को भी, जमीन को भी।

यह चिआँग लुंग चिआओ का छोटा स्टेशन पीकिंग से करीब ७० मील दूर है। नौ बजे राजधानी से चले थे, एक बजे दीवार के नीचे आ खड़े हुए। दीवार का प्रसिद्ध दरवाज़ा 'पा ता लिंग' स्टेशन से बस चन्द मिनट की दूरी पर है। डिनर का खाना ट्रेन में ही सबने खा लिया था और अब हम बग़ैर एक मिनट खोए पैदल बढ़ चले।

गिरोह में पैदल चलने में भी बड़ा मजा आता है। बूढ़े और जवान समान चुस्ती से चले। अलीम गोपालन और मैं साथ-साथ चल रहे थे। साथ ही अमृत भी थे। लड़कियां हिरनों की तरह उछल रही थीं। पेरिन, सरला, पंकज, श्रीमती चट्टोपाध्याय और श्रीमती मेहता का एक झुंड था, पाकिस्तान के सर सिकन्दर हयात खाँ की कन्या और पुत्रवधू का दूसरा। दल के बाद दल। टूटे परकोटे से हम दीवार की बगल में पहुँचे और चढ़ाई शुरू हो गई।

चोटी तक पहुँचने का हमने इरादा किया था पर वहाँ पहुँचना कुछ आसान न था। फिर भी शुरू की चढ़ाई ऐसी मुश्किल भी न थी। हम ताजे थे, चहल-कदमी करते, उछलते, दौड़ते चढ़ चले। पर जैसे-जैसे चढ़ाई सीधी होती चली वैसे ही वैसे हमारे पैर थकने लगे, हमारी चाल धीमी हो गई। कुछ रुक चले, कुछ धीमे हो चले, कुछ राह में आराम करते चले। एकाएक मैंने महाराज जी, गुजरात के हरिशंकर जी व्यास जो पश्चिमी भारत के अत्यन्त श्रद्धेय कांग्रेस नेता हैं, को दीवार की दूसरी ओर नीचे चट्टानों पर उछलते उतरते देखा। वे चोटी तक चढ़ चुके थे और अब वहां से उतर रहे थे जहाँ हम चढ़ते जा रहे थे। आश्चर्य! ७० वर्ष के यह वृद्ध, जो शिष्टता और शालीनता में अनूठे हैं, चोटी तक पहुँचने वालों में पहले थे। हमने उन्हें झाड़ियों के बीच पहाड़ी चट्टानों से होकर उतरने को मना किया और उन्हें परकोटे के

ऊपर खींच लिया। हम ऊपर चढ़ते गए, धक्के देते और खाते, एक दूसरे को सम्हालते। इस्रायल के वृद्ध और महिला अब बैठ गए। पार लगाना उनके बस का न था। अमरीकी दल, उनके बीच आकर्षक श्रीमती गार्डनर, चढ़ाई चढ़ता रहा।

उन्मुक्त हास्य! कभी न भूलने वाला, बिरादराना! अकृत्रिम मैत्री! थक चला था, पर चोटी पर चढ़कर पहाड़ों की ऊँचाई को नीचा दिखाने का लोभ संवरण न कर सका। हालांकि ऐसा करना महज अब 'फार्म' की बात थी क्योंकि मैं चोटी तक प्रायः पहुँच गया था। उमाशंकर शुक्ल ने, जो ऊपर से हो आए थे, ऐसा कहा भी। बड़े प्यारे हैं, यह गुजराती कवि और आलोचक। उनका परिचय पाकर, नागर, तुम प्रसन्न होते, यद्यपि मुझे सन्देह है कि उनमें भी, तुम्हारी तरह, उन भूमध्यसागरतटीय प्राचीन सौदागरों के खून की रवानी है जो पश्चिमी तट पर प्राचीन काल में आ बसे थे। और वे मेरी तरह केवल आलोचक भी नहीं हैं। आलोचक जो चैनिंग पोलक के शब्दों में, सिखाता तो दौड़ना है पर खुद जिसे पैर नहीं होते! उमाशंकर जी कवि भी हैं और ऊँचे तबके के।

फिर भी मैं कुछ सीढ़ियाँ और चढ़ ही गया। सीधा खड़ा हो चारों ओर देखा। दूर तक फैली पर्वतमालाएँ, कहीं एक-दूसरी के समानान्तर दौड़ती कहीं एक से निकल कर दूसरी में खो जातीं। दूर के क्षितिज में उनका तारतम्य विलीन हो गया था। दीवार और पर्वतश्रेणी, पर्वत-श्रेणी और दीवार, दृष्टिपथ के छोर तक। १५०० मील लम्बी, हिमालय की लम्बाई के बराबर। कभी घाटियों में डूबती, कभी पहाड़ की चोटी पर चढ़ती, दूर तक फैली दीवार और उसके वे परकोटे, किले और बुर्जियाँ, युगों के तेज से चमकते हुए। वह महान् दीवार नानकाऊ दर्रे की पहाड़ियों के ऊपर होती उन ऊँची चोटियों के घेरे करती सर्पिल गति से चली जाती है जिन पर इमारत का तो क्या आदमी का पैर टिकना मुश्किल है। जहाँ-तहाँ उसमें विशाल कुंडलियाँ बन गई हैं

जो उस पहाड़ी निर्जनता में विशेष भय का संचार करती है। अत्यन्त प्राचीन परम्परा और आज के बीच बनी वह दीवार जमाने की बदलती तस्वीर को जैसे देख रही है। अशोक के शासन-काल के आस-पास ही उसे क्रूर सम्राट चिन शिह हुआंग ती ने २१४ ई० पू० बनवाया था। दुर्विख्यात सम्राट हुआंग ती ने विद्वानों का दमन कर और उनकी पुस्तकों को जला कर इतिहास में अपना नाम काला किया था। परन्तु महान् दीवार का निर्माण उसकी अक्षय कीर्ति का साधक हुआ। चीन का महादेश साधारणतः पश्चिम में तिब्बत के ऊंचे पर्वतों द्वारा सुरक्षित था, दक्षिण में यांग्सी द्वारा, पूरब में सागर द्वारा। परन्तु उत्तर अरक्षित था। उस दिशा में चीन साहसिक सामरिकों की क्रूरता का शिकार था। चीन के इस खुले द्वार का लाभ उत्तर के उन बर्बरों ने उठाया जो सहसा देश के समृद्ध मैदानों में उतर आते, उनके नगरों को बर्बाद कर देते, उनके असहाय निवासियों को तलवार के घाट उतार देते। हुआंग ती ने, जो अब रेगिस्तान से समुद्र तक का स्वामी था, शत्रुओं के सामने देश की रक्षा के लिये दीवार खड़ी कर देने का संकल्प किया। उसके आदेश से उसके प्रसिद्ध सेनापति मेंग तिएन ने दीवार खड़ी कर दी। दस लाख आदमी लगे। कुछ राज के रूप में, कुछ रक्षकों के रूप में, शेष सामान्य मजदूरों के रूप में। फकत इनसान की ताकत ने दस साल के भीतर वह जादू की दीवार खड़ी कर दी। परन्तु लाखों मजदूर दीवार खड़ी होने के पहले ही उसकी नींव में दरगोर हो गए। उनसे कहीं ज्यादा तादाद में वे थे जो घायल होकर जिन्दगी भर के लिए बेकार हो गए। इसलिये नया चीन, जैसे पुराने चीन के भी कुछ विचारवान लोग, महान् दीवार को अत्याचार और क्रूरता का प्रतीक मानते हैं। वह विशाल इमारत निश्चय असाधारण है परन्तु सामन्ती सदियों के दौरान में कितनी ही इमारतें ऐसी बनी हैं जिन्हें बनाने वाले हाथ बेकार हो गए हैं, बेकार कर दिये गए हैं। जो भी हो महान् दीवार इतनी लम्बी-चौड़ी है कि वह देश का प्राकृतिक, भौगोलिक सीमा बन

गई है। चीन के प्रायः सारी उत्तरी सीमा को घेरती हुई वह अटूट रेखा में दूर के पश्चिमी कानसू के रेगिस्तान से पूर्व के प्रशान्त महासागर तक जा पहुँचती है। जितनी सामग्री उसमें लगी है, जानकारों का कहना है, यदि उससे इक्वेटर पर पृथ्वी को भी घेरा जाय तो वह ८ फुट ऊँची ३ फुट मोटी वेष्टन के रूप में समूची पृथ्वी को घेर लेगी !

पहरे की बुर्जियों में बराबर फौज रहती थी जो अद्भुत सिग्नल द्वारा बहुत कम समय में, एक बुर्ज से दूसरे बुर्ज को, सैकड़ों मील दूर ख़बर भेज देती थी और साम्राज्य की विपुल सेना दीवार के नीचे आकर उन बर्बरों के विरुद्ध सन्नद्ध हो जाती जो रन्ध्र की खोज में बराबर दीवार के एक सिरे से दूसरे तक घूमते रहते थे। नानकाऊ का दर्रा चिरकाल से चीन से दूर मंगोलिया जाने वाले क़ाफ़लों की राह रहा है। इसी की भाँति और दर्रे भी अन्य दिशाओं में जाते थे जिससे दीवार में राह बनानी पड़ती थी। आज तो कई जगह से तोड़कर रेल और दूसरे यातायात के ज़रियों के लिये रास्ते बना लिये गए हैं। दीवार हमारे पास करीब ३० फुट ऊँची है और उसका परकोटा नीचे २५ फुट, ऊपर १५ फुट चौड़ा है। ख़तरे की जगहें ठोस बनावट से मज़बूत कर ली गई हैं। ऊपर ईंटें लगी हैं और बाहरी ओर दीवार की मज़बूती के लिये दोहरा परकोटा दौड़ता है।

हम दौड़ते-कूदते, ढीले-बिखरे ईंटों और पत्थरों पर चलते, नीचे उतरे। सीढ़ियों से नीचे और नीचे, अन्त में प्राकृत भूमि, माता पृथ्वी पर आ खड़े हुए।

अनेक आगे चले गये थे, अनेक पीछे थे। सब उस छोटे स्टेशन की ओर थके, हँसते, किलकते चले जा रहे थे। कुछ ने झाड़ियों और जंगल में अपनी राह खो-ढूँढ़ कर अपने साहस का परिचय दिया। छोटे स्टेशन पर जीवन का स्रोत सहसा फूट पड़ा। विविध पेयों से भरी हज़ारों बोतलें खुलने और तेज़ी से खाली होने लगीं। हम कई सौ थे और चढ़ाई और धूप का असर निश्चय हम पर हुआ था, यद्यपि वे हमारे विनोद और

सुख को कम न कर सके।

ट्रेन चार बजे पीकिंग को रवाना हुई। तीन घंटे जैसे तीन मिनटों में गुजर गये और होटल पहुँचते ही सब अपने-अपने कमरे को भागे। दौड़-धूप खासी हुई थी, आराम की जरूरत सबको थी।

बिस्तर में पड़ा महान् दीवार की-सी इमारतों की निरर्थकता पर मैं देर तक विचार करता रहा। क्या ऐसी इमारतें, स्वयं यह महान् दीवार ही, कभी खूनी कबीलों के हमले रोक सकीं? शायद एक हद तक। शायद किसी हद तक नहीं। जो भी हो, उनमें लगे अनन्त श्रम, असीम धन, असंख्य जीवन का नाश किसी मात्रा में क्षम्य नहीं हो सकता।

इसीलिये नया चीन इस प्रकार की इमारतों की ममता छोड़ उस प्रकार के निर्माण में प्रयत्नशील है जो काल का अतिक्रमण कर सावधि मानव का कल्याण करेंगे। विश्वामित्र ने उन्मुक्त घोषणा की थी— "गुह्यं ब्रवीमि। न मानुषात् श्रेष्ठतरंहि किञ्चित्।" (भेद की बात कहता हूँ। मनुष्य से बढ़कर कुछ भी नहीं!) इस रहस्य का भेद माओ से अधिक किसी और ने नहीं पाया।

नागर, फोटो के उन नेगेटिवों के लिये अनेक धन्यवाद जो, चित्रा लिखती है, उसे मिल गए हैं। जब मैं चीन की ओर चला था, तुम्हारे बच्चे अभी बीमार ही थे। विश्वास है कि वे अब स्वस्थ हो गए होंगे। मेरी ओर से उन्हें प्यार करना, पत्नी को नमस्कार कहना।

स्नेह।

तुम्हारा,
भगवतशरण

श्री राजेन्द्र नागर,
इतिहास-विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ।

पीकिंग,

२६-६-५२

चित्रा,

बहुत नाराज होगी। तुम्हे लिखा नही, यद्यपि लिखता रहा हूँ। और वह भी छोटी नही, खासी लम्बी चिट्ठियाँ। नये चीन के बाबत इतना लिखना जो है। इस चीन के बाबत जिसने अपनी बेड़ियाँ तोड़ दी है। यहाँ सचमुच एक नया संसार खड़ा हो गया है। नये जीवन की हिलोरें सर्वत्र दिखाई देती है। जीवन जो गतिमान है, कर्मठ है, मशक्कत करता, हँसता है।

चीन के बारे मे कुछ विचार तो रखती ही होगी। हम सबके कुछ न कुछ है। कुछ पहले खुद मेरे ही उस दिशा में अपने विचार थे। निहायत सुस्ती के। गतिहीन, स्वप्निल, मदिर जीवन के। ऐसे जीवन के जो युद्धपतियों और गाँव के जालिम जमीदारो के लाभ किये श्रम के पसीने से तरबतर हो। जीवन जो अत्यन्त कंगाल है, सर्वथा शोषित है। मादक अफ़ीम से झुका हुआ, अकड़ा सिर, खुले ओठ। और निःसन्देह हमारे यह विचार पीठ पर गठ्ठर रखे पसीने में डूबे हिन्दुस्तान में घर-घर फिरने वाले चीनी सौदागर से बने है।

पर ऐसे विचार निहायत गलत होंगे। चीन अब वह चीन नही, बिलकुल दूसरा चीन है। एक नया आलम उठ खड़ा हुआ है, नई मानवता सिरज गई है। चीन की जमीन वही है, वही उसका आसमान है, पर दोनों के बीच की जिन्दगी बिलकुल बदल गई है। पहले से सर्वथा भिन्न है। पहले की तरह ही ऋतु के पीछे ऋतु चलती है, पहले की ही भाँति हलवाहा हल चलाता है, किसान पके खेत काटता है पर जाड़े की

फस्ल का अन्न अब गिरता उसकी बखार में है मालिक की बखार में नहीं। सो, बातें बदल गई हैं।

सो, पीकिंग भी बदल गया है। महान् नगर की मंजिलें वही हैं, पुरानी। शालीन दीवारें, आकर्षक झीलें, पार्क, प्रासाद, गढ़, बुर्जियाँ भी पहले-से ही रहस्य का जादू लिये हुए हैं। उसी प्रकार सड़कों के पीछे गलियों में शान्ति विराज रही है, पक्षियों का कलरव वही है। वैसी ही पेड़ों की सनसनाहट है, वैसी ही बच्चों की आवाजें, पर पीकिंग फिर भी वह नहीं है। पहले से बिलकुल भिन्न है।

अभी टहल कर लौटा हूँ। साधारण निरुद्देश्य चक्कर भी इस महान् परिवर्तन को स्पष्ट कर देता है। इस पीकिंग होटल के पास ही उधर, बाएँ, सड़क के पार एक खुला पार्क है। मिनट भर को रिम-झिम हुई थी, सूरज डूब रहा था। मैं उधर निकल गया था। पार्क लोगों से भरा था। लोग घास पर बैठे जहाँ-तहाँ बात कर रहे थे। औरतें सुखी बच्चों को दुलार रही थीं। तन्दुरुस्त ताजे बच्चे चिड़ियों की तरह चहक रहे थे। मैं भी वहीं साँझ की नमी और ओस में खड़ा आसमान को देख रहा था। आसमान, रुई के फैले पोले पर पोले फाड़ता चला जा रहा था।

रात हल्के-हल्के आसमान पर छा चली थी। भीड़ छोटे-छोटे दलों में आती और चली जाती। एकाध आदमी पास आते, मुझे चुपचाप देखते, हल्के से मुस्करा देते, चले जाते। चुपचाप मैं यह दृश्य देख रहा था और रात तारा-तारा गहरी होती जाती थी। चाँद, जो केवल आधा खिला था, रुई के बिखरे खेतों पर सरकता जा रहा था। किसी ने मुझे छू लिया। मैं जमीन को लौटा।

स्पर्श भौतिक न था। केवल कुछ बच्चे पास खड़े हो मुझे देखने लगे थे। बढ़ते हुए सन्नाटे में किसी के निकट आ जाने से वातावरण जैसे जरा बोझिल हो जाता है वैसे ही बोझिल वातावरण की चेतना ने मुझे सचेत कर दिया। यद्यपि सन्नाटा था नहीं क्योंकि इधर-

उधर भीड़ अभी ख़ासी थी। बच्चे तीन थे, कोई चार और छः साल के बीच के। उनकी माँ भी पास ही खड़ी चुपचाप देख रही थी। मैंने झट परिस्थिति के अनुकूल आचरण किया। मुँह से हल्की सीटी बजाई और दो के हाथ थाम लिये। तीसरा लजाकर परे हट गया। यह दोनों भी शर्मीले ही थे पर वे अपनी जगह खड़े रहे। वैसे ही उनकी माँ भी पहले की-सी खड़ी रही। मेरे पास कुछ चाकलेट और टाफ़ी थी, मैंने उन्हें देना चाहा। पर वे लेने को राज़ी न हुए और न उन्होंने लिया। बड़े ने पहले तो अपनी फ्राक की जेब में बार-बार हाथ मारा फिर वह माँ के पास दौड़ गया, उसका बटुआ खोलने और उसे मेरी ओर खींचने लगा। माँ मुस्कराती हुई और पास सरक आई। बच्चे ने बटुए की डोरी खींच ली थी। उसका मुँह खोलकर वह मुझे दिखाने लगा—उसमें टाफी और मिठाइयाँ थीं। जाना, उन्हे इन चीजों की कमी नहीं। एक जो भाग गई थी वह भी पास आ गई और अपनी झुकी मा की छाती में सिर घुसाने लगी।

वह भी बटुए की डोरी खींचने लगी। माँ ने उसे टाफी देकर शान्त किया। माँ सुघड़ थी, कोमल, प्रसन्न। कुछ टाफ़ी उसने मेरी ओर बढाई। मैंने उसकी बात रखने के लिये एक ले ली। वह प्रसन्न हो उठी। उसका चेहरा खिल उठा। उसने पूछा—'इन्दुआ ?' 'हाँ, इंडियन', और तब यह सोचकर कि शायद इन्दुआ का तात्पर्य हिन्दू से है, मैंने कहा 'हिन्दू।' फिर उसने कुछ कहा जो मैं सिवा एक शब्द 'होपिंग' के समझ न सका। होपिंग का अर्थ 'शान्ति' मैं जानता था और मुझे लगा, वह पूछ रही है कि क्या मैं शान्ति-सम्मेलन में आया हूँ। मेरे 'हाँ' कहने पर वह और पास आ गई। कुछ लोग तब तक मुझे घेर कर खड़े हो गये थे—सभी मुस्करा रहे थे, कुछ उत्सुक थे। मेरा हाथ पकड़कर उसने कुछ कहा जिसमें 'होपिंग' लफ़्ज़ बार-बार आया। उसका उच्चारण करते समय उसने वहां खड़े नर-नारियों में से प्रत्येक की ओर इशारा किया, जिससे मैंने जाना कि वह कहना चाहती है कि वह और

वह और वह, सभी शान्ति के प्रेमी हैं। मैं जानता हूँ, वे सभी शान्ति के प्रेमी हैं।

धीरे से किसी ने कहा, 'होपिंग वान्से !' 'शान्ति चिरंजीवि हो !' जो पास से गुजर रहे थे उन्होंने भी नारा लगाया। मैंने भी उन गम्भीर शब्दों को दोहराया। फिर उस महिला से छुट्टी ली, उसके बच्चों से हाथ मिलाया और पास के लोगों से विदा लेकर नये चीन से प्रभावित लौट पड़ा।

और 'वे' कहते हैं कि चीन शान्ति नहीं चाहता, कि चीन की शान्ति की चर्चा लोगों को बेवकूफ़ बनाकर वक्त हासिल करने के लिये है, कि चीन की कान्फ्रेन्सें कम्युनिस्टी फरेब है, कि चीन की जनता द्वारा संगठित शान्ति के मोर्चे सरकारी जबर्दस्ती है। कितना सफ़ेद झूठ है यह ! जो ऐसी बेतुकी बातें कहते हैं उनको समझ लेना चाहिये कि इतना आडम्बर, सरकारी जबर्दस्ती का इतना संगठित प्रदर्शन अगर सचमुच प्रदर्शनमात्र है तब भी वह स्वाभाविक हो रहेगा। आखिर पुलिस या सरकार दिलों में उत्साह नहीं भर सकती। कम से कम चीनी जनता के शान्तिप्रिय होने में मुझे कोई सन्देह नहीं। और मैं अपने वक्तव्य को बग़ैर कोई रंग दिये तुम्हें बताता हूँ—कोई पिता अपनी बेटी को बातें रंग कर नहीं बताता—कि चीनी सचमुच शान्ति चाहते हैं, कि उनके भीतर उसकी आवाज़ बाहर की गरजती तोपों से कहीं ऊँची है, कि वह आवाज़ तोपों की गरज को चुप कर देगी।

एक साँझ डा० अलीम, अमृत और मैं घूमने निकले। वैसे ही, निरुद्देश्य। सड़क चमक रही थी। उसका आकर्षण हमें खींच ले चला; फिर जो प्रसिद्ध 'शान्ति होटल' की सुधि आई तो उधर को चल पड़े। राह मालूम न थी और न भाषा कि किसी से पूछते। पर हम चलते गये और मोड़ पर बाएँ घूम पड़े। एक ऊँची इमारत के सामने दो आदमी बात कर रहे थे। हमने उनसे 'शान्ति होटल' की राह अंग्रेजी में पूछी। स्वाभाविक ही वे कुछ समझ न सके परन्तु उनमें से एक ने

हमको भीतर चलने को कहा। हम उसे धन्यवाद देकर आगे बढ़े। पर उसने राह रोक ली क्योंकि उसे यह मंजूर न था कि हम बगैर अपने सवाल का जवाब पाए चले जाएँ। वह हमें चेष्टाओं-संकेतों से रोककर तेजी से अन्दर गया और झट एक आदमी के साथ लौटा। यह तीसरा भी हमारी बात न समझ सका, पर वह भी हमें जाने न दे जब तक हमारे प्रश्न का उत्तर न मिल जाय। वह भी अन्दर चला गया और एक आदमी लिये लौटा। समस्या हल हो गई। वह अंग्रेजी तुतला लेता था। उन्होंने हमें रोक रखने के लिये बार बार माफ़ी माँगी और अंग्रेजी जानने वालें ने 'शान्ति होटल' की राह बता दी। वह स्वयं हमारे साथ चला और हमारे बहुत इसरार करने पर लौटा। ग़जब का एखलाक़ है चीनियों का।

शान्ति होटल घनी आबादी के बीच ऊँचे मकानों के पीछे खड़ा है। अचरज की इमारत है। गजब की ख़ूबसूरत, हलकी-फुलकी, ईंट, कंकरीट और धातु की बनी बिल्कुल 'माडर्न', पोल्ला और ठोस। आठ मंजिल ऊँची, बीस बराबर-बराबर चौड़ी खिड़कियाँ, आज की जरूरतों से लैस। नीचे की मंजिल की बैठक रुचि का अनुपम दृष्टान्त। उसके पर्दे, उसका रंग और शक्ल, बड़े-बड़े मौलिक चित्र, सभी उसकी ख़ूबसूरती के सबूत हैं।

हमने कनाडा के प्रतिनिधि मिस्टर और मिसेज गार्डनर से मिलना चाहा। उनसे चीनी दीवार के ऊपर पहले हम मिल चुके थे। उनको ख़बर कर हम ऊपर गए। पति-पत्नी दोनों तपाक से मिले। कमरा बड़ा सुन्दर था, उसका फ़र्नीचर आकर्षक। दीवार पर तान हुआंग के एक भित्ति-चित्र की नकल टँग रही थी, वीणावादिनी विद्याधरी की। मूल स्वयं अजन्ता के अनुकरण से बना था। गार्डनर-दम्पति ने हमें बताया कि उनका कमरा ठीक और कमरों की तरह है। फिर वे हमें होटल घुमाने ले चले। ऊपर और नीचे के भोजनागार, कारीडर और बरामदे, छत और दफ़्तर सभी खास ढंग से बने थे। शीशे, धातु और चीनी मिट्टी की

बनी सभी चीजों पर अमन की फ़ाख्ता बनी थी। चम्मच, कांटे, छुरी, सुराही, प्लेट, सब पर, नैप्किन, चादर, तौलिये तक पर। और यह समूची इमारत महज ७५ रोज में खड़ी हो गई थी। पीकिंग के मजदूरों ने उसे चीन के वर्तमान मेहमानों, शान्ति-सम्मेलन के प्रतिनिधियों के लिये तैयार कर शान्ति समिति को भेंट कर दिया था।

कुछ साल पहले जो कुछ हमने पीकिंग के सम्बन्ध में पढ़ा था, उससे आज का पीकिंग बिल्कुल भिन्न है। उसका नया जन्म हुआ है, उसने जन्म की वेदना सही है और आज संसार के सब से साफ़ नगर तक को वह अपना सानी नहीं मानता। निःसन्देह पीकिंग आज संसार का सब से साफ नगर है। कहीं कागज़ का एक टुकड़ा नहीं, कूड़े का एक तिनका नहीं, न सड़कों पर, न गलियों में, न उसके फुटपाथों पर। निश्चय यह कल्पनातीत है। मैंने न्यूयार्क, लन्दन और पेरिस देखा है, मैं उनके बीच का अन्तर जानता हूँ। न्यूयार्क की सड़कों पर बेइन्तहा कूड़ा पड़ा रहता है, उसके फुटपाथ लापरवाही से फेंके अखबारों के पन्नों, टुकड़ों और बंडलों से ढके रहते हैं, उसके डस्टबिन में टाइप-रायटर से लेकर सड़े केले जैसी चीजें पड़ी सड़ती—गन्धाती रहती हैं। पीकिंग की सफ़ाई इतनी असाधारण है कि वहाँ जाने वालों पर उसका असर हुए बिना नहीं रहता, चाहे जानेवाला कितना भी लापरवाह क्यों न हो। सुनो, एक मजेदार किस्सा। राजधानी पहुँचने के दूसरे दिन हम बस में कहीं जा रहे थे। हम में बहुत सारे सिगरेट पी रहे थे पर बस के भीतर उन्हें ऐशट्रे नहीं मिली। दर्पण की-सी साफ सड़कों पर उन्हें सिगरेटों के टुकड़े फेंकने की हिम्मत न पड़ी। तब मैंने अपनी जेब से एक खाली लिफ़ाफ़ा निकाला और उसमें सिगरेटों के टुकड़े भर लिये। मुझे याद है कि थूकदान में डालने के पहले मुझे उस पैकेट को करीब डेढ़ घंटा अपनी जेब में लिये रहना पड़ा था।

यह सफ़ाई चीन की राष्ट्रीय योजना का अंग बन गई है। इस प्रकार की सफ़ाई चीन के सभी नगरों में बरती गई है, पीकिंग में, मुकदन में,

तिएन्त्सिन में, नानकिंग, शंघाई और कान्तोन में। गाँव तक में इसी प्रकार की सफाई की कोशिश जारी है। मंचूरिया के नगरों में मक्खी, मच्छर आदि नष्ट कर देने का आरोग्य-योजना के अतिरिक्त भी एक उद्देश्य है। कीटाणु-युद्ध को बेकार कर देने के लिये चीनियों ने उन जीवों के विरुद्ध ही रण ठान दिया है जो बीमारियों के वाहक हैं। इसी विचार से उन्होंने मक्खियाँ, मच्छर, मकड़ियाँ, छिपकलियाँ, चूहे और रोगों के कीटाणु वहन करने वाले उन सारे जीवों को मार डाला है जो परिवार का सुख, मासूम बच्चों, जवानों और बूढ़ों को खतरे में डाल देते हैं। यह तो खैर दुश्मन के संहारक अस्त्रों का उत्तर मात्र होने से अस्थायी प्रबन्ध है, पर जो बात चीनी जनता का स्वभाव बनकर उसके जीवन में बस जायगी, वह है स्थायी स्वच्छता के प्रति उसका आग्रह। घर, सड़कें, गलियाँ, बाजार, मछली की दूकानें तक सफाई की योजना का अन्तरंग बन गई हैं। नागरिक और विशेषकर नागरिकाओं के सहयोग से सफाई की यह योजना सफल हो रही है। यह योजना वहाँ की जनता के आचरण का अंग बन जाने से रोगों और मृत्यु के अदृश्य साधनों का सफल प्रतिकार करेगी।

पीकिंग ने तीन साल के अर्से में बहुत कुछ देखा है। असाधारण मात्रा में उसमें परिवर्तन हुआ है। वैसे तो वह नगर सदा से सुन्दर रहा है पर इधर सदियों की जमीन-सी ठोस जमी गलीज ने उसे कुरूप और अपवित्र बना रखा था। मजदूरों ने ही उस नगर को सदियों पहले दूसरों के लिये बनाया था, आज वे ही उसे फिर से अपने लिये बना रहे हैं। वे ही जो मेहनत को पुरस्कार समझते हैं, आलस्य से घृणा करते हैं। उन्होंने सैकड़ों मील लम्बी नालियाँ बनाई हैं, पानी के लाखों नल लगाए हैं, हजारों घरों में बिजली लाकर उन्हें चमका दिया है।

पीकिंग की शक्ल आज बदल गई है। उसके प्रशस्त प्रासाद, जो कभी केवल सम्राटों के क्रीड़ास्थल थे, आज जनसाधारण के लिये खोल दिये गए हैं। उसके पार्कों में जीवन इठला रहा है, छोटे-बड़े बच्चे दौड़ते,

खलते और नाचते रहते है। देखन वालों की आँखें निहाल हो जाती है। पार्क प्रायः प्रतिमास बनते जा रहे है, झीलें प्रायः प्रतिवर्ष। और इन्हें बना कौन रहा है? मजदूरों के अलावा लाल सेना। जिस सेना ने चीन को बाहरी शत्रुओं और उनके एजेन्टों से मुक्त किया है वही उसके नगरों और देहातों को भी आज गलीज और गर्द से मुक्त कर रही है। पिछले दो वर्षों में वे सदियों बैठी गन्दगी से फावड़ा लेकर लड़ती रही है, वैसे ही जैसे कुम्हार चाक पर अभिराम कलसे बनाता रहा है, जैसे राज करनी से भव्य भवन खड़े करता रहा है। सेना ने बेकार बैठे रहने या कत्ल के इन्तजार के लिये राष्ट्र से तनखाह लेना नामंजूर कर दिया है। उसके बदले वह नगरों में उत्साहपूर्वक निर्माण करती रही है, गाँवों में फसल बोती और काटती रहती है।

पत्र समाप्त करने के पहले तुमसे बाजार का कुछ हाल कहूँगा। खरीदारी के सम्बन्ध में तुम्हारी उदासीनता मैं जानता हूँ। यद्यपि वह लड़कियों की खास कमजोरी है, तुम में नहीं है। इससे चाहे तुम्हें दूकानों के बाबत जानकारी में कुछ खास दिलचस्पी न होगी, फिर भी पीकिंग के बाजार का कुछ हाल सुनो।

वांगफ चिंग पीकिंग के बाजार की प्रधान सड़क है। मैंने कान्तोन का बाजार देखा है, पर पीकिंग कान्तोन से हर बात में बड़ा है। देखा कि सड़क पर खासी भीड़ थी, दूकानें भी लोगों से भरी थीं। सरकारी दूकानों में जोर की बिक्री हो रही थी। उनके भीतर और दरवाजे में नर-नारी सकसे हुए थे। गर्मी काफी थी। सूरज चमकती कली की भाँति तप रहा था। लोग भीतर घुसने के इन्तजार में बाहर क़तार में खड़े थे। पास के गाँव के किसान, रात में काम करने वाले मजदूर, सैनिक, गृहपत्नियाँ। सरकारी दूकानें दस घन्टे खुलती हैं, ग्यारह बजे दिन से नौ बजे रात तक। इतवार को भी। असल में इतवार को भीड़ और ज्यादा हो जाती है। हफ्ते के और दिन गाहकों की संख्या करीब २२,००० होती है, इतवार के दिन ४४,००० से भी ऊपर। हफ्ते में १,७५,००० से ऊपर

गाहक । अकेली दूकान के लिए गाहकों की यह तादाद कुछ कम नहीं। फिर दूकानों की वहाँ कमी नहीं और न उनमें सजाए बिकने वाले माल की। मैंने भीड़ को बगैर किसी गुस्से या परेशानी के आपस में टकराते, धक्के देते और धक्के खाते दूकान की सीढ़ियाँ चढ़ते देखा। जो आगे चीजें खरीद रहे थे वे पीछे वालों की ओर, देखकर मुस्करा रहे थे, जैसे कह रहे हों, हम अभी जगह कर देंगे, एक मिनट और बस हमारी खरीदारी खत्म है। लोगों में गहरा भ्रातृभाव है यद्यपि वे शायद ही कभी मिले हों। ऐसे ही मौकों पर शायद एक-दूसरे को देखा हो, पर बात तो कभी नहीं की। एक युवा लड़की, जो शायद विद्यार्थी थी, शायद मजदूर थी, एक आदमी और औरत के बीच दबी खड़ी थी। आदमी उससे हटे रहने की कोशिश कर रहा था पर मारे भीड़ के अपने को सम्भाल न पाकर अपने दबाव से उसको बचाने की बराबर कोशिश कर रहा था। क्षण भर के लिए युवती की आँखें मुझ पर पड़ीं। मैं जो विदेशी उसका संघर्ष देख रहा हूँ। वह मुस्करा पड़ती है, जैसे आँखों-आँखों से ही कहती है—कोई बात नहीं, कोई परेशानी नहीं, न कोई कष्ट हो रहा है, बात बदस्तूर है। फिर भी उसकी लाचारी से कुछ दुःखी हो जाता हूँ, उसकी ओर मुस्कराने की कोशिश करता हूँ। मेरा मुस्कराना वह पूरा देख नहीं पाती क्योंकि भीड़ का दबाव ढीला पड़ गया है और वह झट दूकान के भीतर चली गई है। मैं उसे और नहीं देख पाता। पर जितना ही मुझे उसकी तेजी पर विस्मय होता है उतना ही उससे सन्तोष भी। वह तुम लोगों-सी नहीं जो छिपकली देखकर काँप जाय, झींगुर की आवाज़ सुनकर सहम जाय, कोई छुईमुई नहीं जो स्पर्शमात्र से मुरझा जाय; वस्तुतः उन्मुक्त चीनी नारी जो बवंडर चढ़ तूफान पर हकूमत करती है। निरुद्देश्य मैं इस दूकान से उस दूकान में जा रहा हूँ, तेजी से घुस जाता हूँ, तेजी से बाहर निकल जाता हूँ, कुछ लेना नहीं, पर भीड़ का दृश्य देख अधिकाधिक उत्तेजित होता जा रहा हूँ। चीनी बर्तन अभिराम चित्रित रंग-बिरंगी चित्रित सुन्दर छोटी लकड़ी की कंघियाँ अनेक

डिजाइनों के महिलाओं के पंखे, आकर्षक छतरियाँ, ... बाँस के गिलास, किमखाब जो मलकाओं को ललचा दे, सिल्क और साटन, तैयार बने कोट, पाजामे और चोगे, और वैदूर्य शीशे तथा धातु की बनी चीजें— मँहगी और सस्ती, मँहगी से ज्यादा सस्ती। असंख्य विलक्षण वस्तुएँ। यहाँ यह छोटा वर्तन रखा है, जिसमें, प्रेम में असफल हो जाने के कारण छोटी साम्राज्ञी ने जहर पिया था, वहाँ वह तेज खन्जर है जिसके जरिये अनधिकारी विजेता ने औरस वारिस को अपनी राह से हटा दिया था, उधर वह जादू की लकड़ी है जिसने मरे को जिला दिया था, इधर यह रकाबी है जो जहर डालते ही रंग बदल देती है— यह सारे जादू अब प्रभावहीन हो गए हैं। इनमें से कोई आज इतना पुरअसर न रहा जितना नये चीन के निर्माण का जादू जो आज असम्भव को भी सम्भव कर रहा है।

चीजें सस्ती हैं। बाँस की बुनावट से सजा थरमस तीन रुपए का है, फाउन्टेनपेन छः का, सुन्दर घड़ियाँ ६० की। चावल पाँच आने सेर! और अब चीज़ की बारीकी और क्वालिटी का ख्याल ज्यादा है। सुन्दर और 'टिकाऊ' चीजों की कीमत लोग ज्यादा देने को तैयार हैं। खरीदने की ताक़त बढ़ गई है, खरीदारों की तादाद बराबर बढ़ती जा रही है। फुटकल बेचने वाले एक दूकानदार से पूछा कि इस साल का रोजगार पिछले साल के मुकाबले कैसा है? जवाब मिला, रोज़ से ५०० रुपए की बढ़ती, आज की २६ तारीख को।

फुटकल रोज़गार में बाढ़-सी आ गई है। औद्योगिक उत्पादन की बढ़ती ने मजूरों की मजूरी बढ़ा दी है, इस्तमाली चीज़ों की कीमत घटा दी है। कीमतें बदस्तूर कायम रखने के लिए चीज़ों को भट्ठियों की आग में डालने की ज़रूरत नहीं पड़ती। गाँव की फ़सल ने किसानों की आय बढ़ा दी है, साथ ही गाहकों के लिये मोल घटा भी दिया है। सानफान और वूफ़ान (भ्रष्टाचार, बर्बादी और दफ़्तरी सुस्ती के विरुद्ध आन्दोलन) मूल्यों के अध्ययन के अनुकूल संगठित उत्पादन और सरकारी कारखानों

के बेहतर तरीकों ने कीमतें और कम कर दी है। औरस वैयक्तिक व्यापार व्यवसाय की आमदनी से भरपूर लाभ उठाता है। सरकारी रोजगार निजी रोजगारों को राह दिखाते हैं और खानगी उद्योगों की आर्डर तथा ठेकों द्वारा मदद करते है, साथ ही सौदागरों को थोड़े ब्याज पर कर्ज देते है, जिससे वे माल थोक में नकद दाम पर सीधे कारखानों से खरीद सकें। माल का तेजी से वितरण और खरीदार के ऊपर कीमत का हल्का भार उसी का परिणाम है।

चित्रा, लगता है धुन मुझ पर सवार हो गई, क्योंकि मैं अर्थशास्त्र की खासी चर्चा करने लगा हूँ। अब मैं लिखना बन्द करूँगा जिससे तुम्हे दरों की यह नीरस तालिका पढ़ने से राहत मिले और साथ ही मुझे भी वक्त की कुछ बचत हो। इसी वक्त हमारे डेलीगेशन की बैठक है। महत्त्व की बैठक, कश्मीर की समस्या पर विचार करने के लिये। पाकिस्तान का प्रतिनिधि-मंडल आ पहुँचा है। हम चाहते हैं कि दोनों की ओर से एक सम्मिलित घोषणा करें जो शान्ति-सम्मेलन स्वीकार कर ले। हमने प्रण कर लिया है—उन्होंने पाकिस्तान की ओर से, हमने हिन्दुस्तान की ओर से—कि हम अपनी सरकारों को अमन बरकरार रखने और लड़ाई न करने को मजबूर कर देंगे।

पाकिस्तान डेलीगेशन के बारे में एक लफ्ज। मंकी शरीफ़ के पीर उसके नेता है। डेलीगेशन में हर विचार और पेशे के लोग आए हुए है। मर्द और औरत दोनों, जिनकी राजनीति भिन्न है, ख्याल दिगर है। हाँ, औरतें भी है, दो-एक तो कभी के पंजाब सरकार के वज़ीर-आजम सर सिकन्दर हयात खाँ की बेटी और पाकिस्तान टाइम्स के सहकारी सम्पादक मजहर अली खाँ की बेगम, ऊँची और मनस्विनी ताहिरा; दूसरी उनके भाग्यवान पुत्र, कभी के शिक्षा-मंत्री शौकत हयात खाँ की बेगम, कान्फ्रेन्स की महिलाओं में सब से सुन्दर, निःसन्देह अत्यन्त सुन्दर। मियाँ इफ्तखारुद्दीन भी आए हुए हैं। नाटे, हल्के, मुख्तसर-से मियाँ, विनोदशील ऐसे कि सेलोलाएड की गेंद की तरह एक मज़ाक से दूसरे

मजाक़ को उछालते रहने वाले। ऐसे, जो पहाड़ को हिला दें। अभी हाल इंगलैंड में थे, पर जब उनकी सरकार ने अमन के लड़ाकों को पासपोर्ट देने से इन्कार कर दिया तो घर भागे, वहाँ आन्दोलन किया, उन्हे पासपोर्ट दिलाकर रहे। वे अब यहाँ है।

अब देखो बेटी। खाना कायदे से खाना। ना-नू न करना, जिससे स्वस्थ रह सको। मैं बिल्कुल स्वस्थ हूँ, प्रसन्न। शाम नम रही है, सुस्त। आसमान काले बादलों मे घिरा है। हवा सन-सन कर रही है। अजब नहीं जो रात मे मेंह बरसे। अगले दिनों का अन्देशा है, कही दुर्दिन न हो जाय। विदा। प्यार और आशीर्वाद।

तुम्हारा,
पापा

कुमारी चित्रा उपाध्याय,
वीमेन्स कालिज हॉस्टल,
काशी विश्वविद्यालय,
बनारस

पीकिंग,
२७-९-५२

प्रिय वात्रे,

रात नम थी। कुछ मेंह भी बरसा था। डरता था कि दिन भी अगर रात की ही तरह भींगा तो बाहर जाने का विचार छोड़ देना पड़ेगा। पर पौ फटते ही डर दूर हो गया। दिन चमक उठा था, सूरज ने दिशाओं में आग लगा दी थी।

बैठक नर-नारियों से भरी थी। होटल के बाहर का मैदान भी। सारी जातियों के लोग, जो चीन के राष्ट्रीय दिवस और शान्ति-सम्मेलन में शामिल होने पीकिंग आए थे, बसों में बैठ रहे थे। बसें अटूट सर्पाकार रेखा में चलीं। नाक से दुम लगी थी, दुम से नाक। लक्ष्य चीनी सम्राटों का ग्रीष्म प्रासाद था।

पीकिंग से करीब २० मील उत्तर-पश्चिम, पश्चिमी पहाड़ियों की आधी राह, प्रकृति के खुले वैभव के बीच स्वर्ग फैला पड़ा है। वह नया ग्रीष्म प्रासाद है। प्रसिद्ध वैदूर्य का सोता वहाँ से बस एक मील है। उसकी गहराइयों से निर्मल स्फटिक सदृश जल का स्रोत अविरल बहता रहता है। पहाड़ियों के नीचे खुले मैदान में झील बन गई है जिसके चमकते जल के किनारे उसे घेरते हुए-से चीन के सम्राट्-कुलों ने अपने ग्रीष्म प्रासाद खड़े किये हैं। जैसे-जैसे युग बीते, शिल्प की अभिराम आकृतियाँ खड़ी होती गईं। पहले-पहल बारहवीं सदी के बीच पश्चिम की इन पहाड़ियों में सम्राट् वाङ-येन-लिग ने अपनी राजधानी बसाई। फिर तो महल पर महल बनते चले गए। यूआनों, मिंगों, मंचूओं ने वहाँ आमोद किया, अपने महलों की परम्परा में आनन्द का स्रोत बहाया, वहीं, जहाँ प्रकृति खुले आंगन में अपना शृंगार करती थी, सम्राट्

और युद्धपति आपान से मदे झूमते थे, मानिनियां प्यार और दुश्मनी करती थी, खोजे मुखबिरी करते थे।

फ्रेंच और ब्रिटिश सेनाओं ने महलों को गोलाबारी से तोड़ दिया। १२ साल तक सम्राट् का दरबार बगैर ग्रीष्म प्रासाद के रहा। रोमैन्टिक विधवा साम्राज्ञी त्जू ह्सी इस स्थिति को गवारा न कर सकती थी। प्रमदवन का जादू भुला देना उसके लिये सम्भव न था। उसने पुराने विहार-स्थल को फिर से जगाने के सपने देखे, प्रण किये। चीनी नौसेना बनाने की योजना थी। २,४०,००००० ताएल उसके लिये अलग जमा कर लिये गए थे। साम्राज्ञी ने उस धनराशि को चुरा लिया। उससे ढाई हजार मील लम्बी रेलवे बन सकती थी, पर तन की भूख उससे लम्बी थी और मन की उससे कहीं लम्बी। १८८८ में वान शाऊ शा। के महल रहने के लिये तैयार हो गए। ६० वर्ष की आयु में उस विलक्षण नारी ने अपने विहारोद्यान में प्रवेश किया। आयु ने व्यंग किया पर तृष्णा विजयिनी हुई।

हम उसी ओर बढ़ते चले जा रहे थे। जैसे ही हम नगर और पास के खेतों से बाहर निकले, दूर की गगन-रेखा पर चमकती खपड़ैलों की छत दिखाई पड़ी। आखिरी मोड़ घूमकर हम ऊँचे लकड़ी के विशाल तोरण के नीचे से निकले। सामने की इमारत ऊँची और आकर्षक थी, विविध डिजाइनों के खचनों से भरी। उसके खानों के आलेख जड़े खम्भों और अजहदों वाली लकड़ी की शहतीरों के रंगों से चमक रहे थे। पुराने दरबारों के चितेरे, बाप्रे, गजब के रंगसाज थे। कलावन्त ने कभी इस मेधा से रंगो को न मिलाया, कहीं इस कुशलता से ब्रुश का घेरा न डाला गया, इतनी विचक्षणता से कहीं जमीन चित्रों से न लिखी गई। लाल, पीले, नीले, सुनहरे और हरे रंग अधिक प्रयुक्त हुए है, परन्तु इनकी शोखी बड़ी चतुराई से हल्के रंगों से नरम कर दी गई है, इससे यह तोरण जैसे सहसा जीवित हो उठा है। रंग भरी ओरियालियां अपनी चित्रराशि लिये चमक रही हैं। उनके ऊपर चमकती पीली खपरैलों की छाजन है।

तोरण की तिहरी बनावट का मस्तक इन्हीं खपरैलों से अत्यन्त भव्य बन गया है।

पीछे यह विस्तृत आँगन है जहाँ हम घूम रहे हैं, लोग एक-दूसरे को भेंट रहे हैं, मित्र बना रहे हैं। यहाँ जैसे एक दुनियाँ उतर पड़ी है। कवि और चितेरे, गायक और स्वरसाधक, लेखक और पत्रकार, राजनीतिज्ञ और राजदूत, डाक्टर और पादरी, नर्तक और अभिनेता, वकील और सौदागर—गोरे, काले, गेहुँए, पीले—मित्र भाव से एक-दूसरे से मिल रहे हैं। शालीन शान्ति-सम्मेलन का निःसन्देह यह शालीन आरम्भ है।

वह नाज़िम हिकमत है, विख्यात तुर्की शायर, जिसकी आवाज सालों अंकारा के जेलों की खामोशी भरती रही है। ऊँचा तुर्क अपने कायलों की भीड़ के बीच खम्भे-सा खड़ा है। जिस्म में तगड़ा है, पर हाथ में छड़ी लिये चलता है। बालों में जहाँ-तहाँ सफेदी है, शायद ६० का हो चुका है। झबरी मूँछों में मुस्कान सदा बिखरी रहती है, खुली हँसी द्वारा झेली मुसीबतों पर वह सर्वदा जैसे व्यंग करता रहता है। वह उधर एनीसीमाव है, सोवियत दल का नेता और मास्को के अन्तर्राष्ट्रीय प्रकाशन का प्रधान सम्पादक, वैसा ही ऊँचा। कुछ गम्भीर पर उचित अधिकारियों के प्रति मुस्कराने से चूकता नहीं। और वहा वह नाटा, तगड़ा, मुग्ध सुननेवालों का प्यारा, गायक, तुरसूनजादे हैं, ताजिक शायर, जो हिन्दुस्तान पर भी लिख चुका है। सिर के बाल निहायत छोटे कटे हैं, भारी मस्तक चौड़े कन्धों पर झूम रहा है। तीनों मुझे सोवियत और भारतीय लेखकों की गोष्ठी में मिले थे। उधर वे दक्षिण अमेरिका वाले हैं, गोरे, धूप से तपाए दमकते तांबे के रंग-से, छोटे गिरोहों में सरकते अपने बेशुमार राष्ट्रों की ही भाँति अनेक। उन्हीं में वह सलामिया है, सुन्दर कोलम्बियन, वहाँ का भूतपूर्व शिक्षा-मन्त्री। कभी स्पेन में कोलम्बिया का राजदूत था। आज स्वदेश से निर्वासित है, अर्जेन्टिना में प्रवासी। बाल उसके घने-घुंघराले हैं, असामान्य गम्भीरता से चलता है। कवि, निबन्धकार, कला-पारखी सलामिया ने मुझे अपनी

हाल की कविताओं का संग्रह भेंट किया, अभिराम रुचि से प्रस्तुत जिल्दवाला सुन्दर संग्रह। काश कि मूल स्पेनी के ऋद्ध राग में समझ पाता!

हमारे दुभाषिये और गाइड हमें आगे बढ़ने को कहते हैं। हम छोटे-छोटे दलों में आगे बढ़ते हैं। हमारा गाइड प्रो० चाङ है। चाङ प्रोफेसर नहीं है. फ़कत विद्यार्थी है, पर हम उसे उसके रोब के कारण प्रोफेसर ही कहते हैं। उसकी टिप्पणियों में भाषा का राज होता है। व्याख्या करता-करता वह सहसा रुक जाता है, पूछता है, 'अथवा, महानुभाव, आपका मत भिन्न है?' या रुककर कहता है, 'अब मैं आपकी राय जानना चाहूँगा।' औरों की ही भांति चाङ भी भाषा का विद्यार्थी है। गाने के लिये कहने पर जरा तकल्लुफ नहीं करता। झट राग अलाप देता है, बगैर गुनगुनाए, कभी दुखभरा राग, कभी मार्च-गीत, कभी राष्ट्रीय गान। अतीत के अनेक खंडहरों में वह हमारे साथ रहा है, उसने हमें राह दिखाई है। अद्भुत है।

द्वार पर दो विशाल बैठे कांसे के सिंह हैं, धातु की ढलाई के अनोखे चीनी नमूने। फाटक जो कभी सदा बन्द रहते थे, आज अपने कब्जों पर घूमे खुले खड़े हैं। सिंह साम्राज्य-शक्ति के प्रतीक हैं और जहाँ उनके पंजे तले किमखाबी जमीन की गेंद है, वे चक्रवर्ती शक्ति के परिचायक हैं। गेंदें विश्व की गोल काया का ज्ञापन करती हैं।

पहली विशाल इमारत विधवा साम्राज्ञी का दीवाने-ख़ास है, ताज-पोशी का हाल। इसके पास से होकर हम झील के तट पर चले जाते हैं, चट्टानी टीलों पर जा खड़े होते हैं। कैमरे खड़क उठते हैं, तस्वीरें ले ली जाती हैं। गिरोह खिलखिला उठते हैं। खुशी की किलकारियाँ विषाद की छाया को ढक लेती हैं। विनोद चिन्ता को लील जाता है। आनन्द का स्रोत स्वच्छन्द वह चलता है।

हम इमारतों की ओर बढ़ते हैं। दृश्य जैसे फैल जाता है। लम्बे-चौड़े आँगन और बड़े-बड़े हाल, एक के बाद एक हमारे सामने खुलते जाते

है, हमारी नजर बिखर-बिखर उन पर छा जाती है। जो कुछ प्रकृति का उदार हृदय दे सकता है, जो कुछ मनुष्य की कला और कौशल मूर्त कर सकता है, वह सारा इस स्थल पर एकत्र हो गया है। बगीचे और फूल, निकुञ्ज और झुरमुटें, पहाड़ियाँ और झीलें, द्वीप और पुल, मन्दिर और पगोडे, अपने सम्पूर्ण प्राकृतिक और मानवकलित वैभव के साथ एकत्र उठ गये हैं। इनको जगह-जगह बरामदे और आँगन एक-दूसरे से अलग करते हैं, ग्रीष्मप्रासाद की सुषमा बढ़ाते हैं। पहाड़ियों में सदियों का ऐश्वर्य भरा पड़ा है। उनमें वह सब कुछ है जो चीन का वैभव और कला दे सकी है—ध्वजा-चित्रण, पोर्स्लेन और वैदूर्य के अनन्त बर्तन, हाथी दाँत और कीमती पत्थर जड़े काम।

पहाड़ियों के पार्श्व और चोटी पर अनेक इमारतें खड़ी हैं, मन्दिर और पगोडे, रंगमंच और दावतों के हाल। सबसे ऊँचा पोर्स्लेन पगोडा है। उसका मस्तक हरी-पीली चमकती खपड़ैलों से ढका है और इमारत वैदूर्य-सोने की पच्छिमी धूप से नहाती ढाल पर खड़ी है। उसके अठ-पहले चेहरों में सैकड़ों खाने कटे हैं, जिनमें बैठे बुद्ध की मूर्तियाँ लगी हैं। कुन मिंग हू झील की परिधि चार मील से अधिक है। उसके समूचे उत्तरी तट को घेरती सुन्दर रेलिंग है, संगमरमर की बनी, जो दृश्य को दुगनी सुन्दर बना देती है।

ग्रीष्म-प्रासाद की शान्ति वाटिका—प्रसिद्ध यी हो युआन—वहाँ की सुन्दरतम कृति है। पहले-पहल वह १७५० में बनी थी. १८६० में उसे बर्बर यूरोपीय गोलाबारी ने तोड़ दिया था। विधवा साम्राज्ञी ने उसको फिर से बनवाकर उसका नया नामकरण किया। वनावृत वान शाओ शान—'दस सहस्र युगों का पर्वत'—के चरणों में फैली कुनमिंग झील की चमकती जलराशि के तट पर साम्राज्ञी का मन रम गया। वहाँ पुराने राज्य की चिन्ताओं से मुक्ति पाई। फूहड़, अशिष्ट आँखों से दूर उसने अपने आमोदआगार और प्रमदवन उन्हीं पहाड़ियों में बनाए, वहीं उसने अपने बीते सौन्दर्य की जगी भूख के आहार के लिये सैकड़ों जाल

बिछाए। पीकिंग में रहते शायद अन्तर की चेतना उसके आनन्द में बाधा डालती, शायद उसके आपानों की शृंखला को तोड़ देती। परन्तु यहाँ वह अपनी चुराई करोड़ों की सम्पदा द्वारा स्थल को निःसंकोच सजा सकती थी। उसका आवास, झील से झांकता, विशेष सोपानमार्गों से सज्जित है। उसकी वेदिकाएँ समुद्री फेन के आकार की बनी हैं, कुंडली भरते अजहदों की शक्लों में ऐंठ दी गई हैं। अन्य चीनी महलों की ही भाँति साम्राज्ञी के महल भी बरांडों और विमानों की अपनी परम्परा लिये हुए हैं, जो फैले आँगनों से जड़े हैं। गर्मियों में यह आंगन फूले, पेड़ों और झाड़ियों, उनकी लदी कलियों की गमक से भर जाते हैं। आंगनों के ऊपर रंगबिरंगी चटाइयां बिछी हैं, पेड़ों और झाड़ियों के ऊपर, जिससे आंगन गर्मियों में सुगन्ध भरे कमरों-से हो जाते हैं। साम्राज्ञी के आवास से एक छाई-ढकी राह निकलती है, जैसे चलता हुआ बागीचा ऊपर लताओं के सौरभ से लदा, ग्रीष्म-प्रासाद के दृश्यों से चित्रित सैकड़ों अलंकरण चेहरे और बग़ल से उठाए। यह राह संगमरमर की वेदिकाओं के साथ-साथ झील के उत्तरी तट पर लगातार चली गई है। वितानों और पुलों को पीछे छोड़ती, तोरणों और महलों से गुज़रती, यह शीतल राह संगमरमर की ऊँची नौका तक चली जाती है। इसके एक सिरे से दूसरे सिरे तक दोनों ओर लगातार सरों की कतार है, जिनके बीच-बीच से संगमरमर की राहें निकल गई हैं।

इमारतों का दौरा कर हम 'लंच' के लिये बैठे। ऐसा लंच कभी न देखा था। उस भोज ने रोमन दावतों की याद दिला दी। मैंने बदस्तूर जानवर को हटाकर घास पर गुज़ारा किया। लंच में दो घंटे से ऊपर लग गए और जब तक हम बगीचे की उस अद्भुत फूलों लदी राह से झील के तट पर पहुँचे, छाया लम्बी हो चुकी थी, सूरज पहाड़ियों को चूम चला था।

हम में से कुछ भारतीय दूतावास चले गये थे। जो बचे वे जल-विहार के लिये नावों में जा बैठे। अनेक नौकाएं महलों के कांपते नगर

को प्रतिबिम्बत करती जल की उस सतह पर चुपचाप तैर रही थीं। पश्चिमी क्षितिज में आग लगी थी, पूर्वी क्षितिज पर जैसे कोहरा छाया था। सूरज सहसा डूब गया; सोने की सिकताएँ जो पानी की लहरियों पर नाच रही थीं, एकाएक तल में समा गईं। दूर आसमान और ज़मीन के बीच उस स्वच्छतम वातावरण में काली-नीली धारियों की एक राह बन गई थी। उसी कांपती राह से अर्धचन्द्र की धूमिल चाँदनी उतर-उतर जलराशि पर पसर रही थी।

नावें भरी हैं। यूरोपीय और अमरीकी, ईरानी, ट्यूनीशी और तुर्क तालियाँ बजा रहे हैं, गा रहे हैं। हम भी बातें कर रहे हैं, हँस रहे हैं, मजेदार कहानियाँ कह रहे हैं। बीनू का विनोद जाग्रत है, चक्रेश गुन-गुना रही है, रोहिणी हलके अलाप रही है। पुल के नीचे से निकलकर झील पार हम नाव से उतर पड़ते हैं।

समूचे दिन की सैर के बाद हम होटल लौटे हैं। ओप्रा होने वाला है, पर दिन की थकान के बाद ओप्रा जाने की तबियत नहीं होती। लिखने को जी चाहता है। लिखने बैठ जाता हूँ।

आप सुखी होंगे। हमारा शान्ति-सम्मेलन दूसरी अक्तूबर तक स्थगित हो गया है। इससे एक हफ्ता और चीन देखने का मौका मिल जायगा।

स्नेह।

आपका,
भगवत शरण

श्री जितेन्द्रनाथ वाग्छे,
ऐडवोकेट, हाईकोर्ट,
४ एल्गिन रोड,
इलाहाबाद।

पीकिंग

विनोद जी, ३०-९-५२

इस यात्रा में आपकी याद अनेक बार आई। चाहा कि लिखूं, पर समय न मिला। आज आधी रात गये आपको लिखने बैठा। अभी नये चीन के स्रष्टा माओ की दावत से लौटा हूँ। रात खासी जा चुकी है, पर सोचा, खत लिख ही डालूँ, वरना कल पहली हो जायेगी—अक्तूबर की पहली, चीनी नव राष्ट्र की तीसरी जयन्ती। और जैसी तैयारियां देखता आ रहा हूँ, उससे जाहिर है कि कल का दिन कुछ आसान न होगा। कम-से-कम पत्र लिख सकने की गुंजायश कल नहीं दीखती। इससे आज, इस गहरी रात की तनहाई में—

प्रतीभोज यह उसी राष्ट्रीय दिवस के उपलक्ष्य में था। भोज अनेक देखे हैं, अनेक अन्तर्राष्ट्रीय दावतों में शामिल हो चुका हूँ—गोल अम्बर का चक्कर काटा है, पृथ्वी की परिधि नापी है, कुछ अजब न था कि देश-देश की दावतों का नजारा लूं—पर अभी-अभी जहां से लौटा हूँ, वह अपना राज रखती है, स्मृति-पटल से मिट न सकेगी।

बयालीस राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने—शान्ति-सम्मेलन और इस राष्ट्रीय दिवस के समारोह में भाग लेने वाले—कन्धे से कन्धा मिलाकर 'सह नौ भुनक्त' का आदर्श सामने रखा था। दूर देशों के नर-नारी, जिन्होंने दूर देशों के नाममात्र सुने थे, आज स्पर्श की परिधि में थे। २७०० व्यक्तियों का संसार खड़ा था, उस बुफे दावत में, जिसमें खाना खड़े होकर ही होता है। और इस संसार का व्यक्ति-व्यक्ति निजी शख्सियत रखता था, भीड की इकाई मात्र न था।

इनमें मनस्वी कलाकार थे, मेधावी चिन्तक, भावुक साहित्यकार।

कर्मठ राजनीतिज्ञ थे, ईमान के नाम पर जूझने वाले क्रान्तिकारी—जिस्मलाग़र, पर जिनकी तनहा आवाज़ जेलों की तनहाइयों में सालों गूँजती रही है, छत को छेद बियाबाँ लाँघ आततायियों के परकोटों को हिलाती रही है, यद्यपि जिनका शुमार, जिनकी कुर्बानियों का तख्मीना, सभ्य स्टेट्स्मैन नहीं करते (भुक्तभोगी हो, जानते हो, कहना न होगा)। और थे मानवता के प्रेमी, आदमी की पेशानी पर एक बल जिनके दिल में दरारें डाल दे, धर्म के अकिंचन सेवक, बुद्ध-ईसा-गांधी के अनुयायी, शान्ति के उपासक, राजदूत, सैनिक, किसान, मजदूर और जाने कौन-कौन, पर सभी जंगबाज़ी के दुश्मन।

अंग्रेज़, फ्रांसीसी, जर्मन, इटालियन, रूसी, पोल, चेक, हंगेरियन, रूमानियन, बुल्गर, ग्रीक, तुर्क; मिस्री, त्युनीशी, यहूदी; ईरानी, पाकिस्तानी, हिन्दुस्तानी, सिंहली, इंडोनीशी, फिलिपीनो, अफ्रीकी, आस्ट्रेलियन, न्यूज़ीलैंडर, बर्मी, लाओ, वियत्नामी, हिन्द-चीनी, स्यामी, तिब्बती, मंगोल, जापानी, चीनी, कोरियाई, कनैडियन, अमरीकी, लातिनी-अमरीकी—देश-देश की जनता के रहनुमा, जाति-जाति के पेशवा, क़ौम-क़ौम के रहबर।

पीकिंग शीतप्रधान नगर है। सितम्बर की साँझ गर्मी की होती हुई भी नम हो जाती है, कुछ हलकी सर्द। जब होटल से बसों में चले थे, साढ़े सात बजे, तब मनभावनी शीतल वायु बह रही थी, विशेष सर्द तो नहीं, पर ऐसी भी नहीं कि आप लापरवाह हो जाएँ। राह की नमी और 'स्वर्गीय शान्ति' के इस हाल में बड़ा अन्तर था। हाल गरम था। कुछ गरम रखा गया था, कुछ तीन हज़ार प्राणियों की गरमी। आप जानते हैं, तनहा इन्सान जब-तब गरम हो उठता है, उसके लगी आग दूसरों को गरम कर देती है, यहाँ तो तीन हज़ार थे जिनके विचारों की आग क्या नहीं कर सकती थी—आग, जो हलकी आँच बनकर आलम को सेंके, आग जो अपनी लपटों से ललककर आततायी कंगूरे झुलस दे।

स्वर्गीय शान्ति का हाल, विशाल, लम्बा-चौड़ा इतना कि फौज बैठ

जाय। इतना बड़ा हाल शायद ही कहीं देखा हो, याद नहीं। तीन सौ साल पुराना, मंचुओं का बनाया। दर्जनों मोटे सुन्दर खंभे छत को सिर से उठाये हुए। खभों का चीन में एक अलग राज्य है। घरों में, सार्वजनिक भवनों में, मन्दिरों में अधिकतर लकड़ी के खंभे, कहीं पेड़ों के साबुत तनों से बने, कहीं तनों की कटी गज़-गज़ भर दो-दो गज़ की गोलाइयों से बने, पर बाहरी रंग से गज़ब के सुन्दर और रंग लाल, चीनियों का अपना, जिन्दगी का रंग। जमीन लाल, छत लाल, खंभे लाल, दीवारें लाल और अब सरकार लाल।

घुसते ही बन्द बरामदे, वस्तुतः लम्बे कमरे से होकर गुजरना पड़ा। वातावरण फूलों की गमक से महँ-महँ हो रहा था। देखा हरसिंगार के पेड़-सी, पर हरसिंगार नहीं, एक झाड़ खड़ी है, फूलों से लदी-झुकी, अन्दर की हवा को अपने पराग से बसती। सुगन्ध मधुर थी, बड़ी भीनी, इतनी तेज नहीं, फिर भी इतनी कि दूर तक कमरे का कोना-कोना गमक रहा था। शायद वह पेड़—नहीं जानता कौन-सा था, पूछा भी नहीं—चीन का अपना है, हवा-पानी-धूप से अलग रह कर भी जीने और फूलने वाला, या सम्भव है साधारण पेड़ को ही साधकर चीनियों ने वैसा बना लिया हो, आखिर इस तरह के हुनर में चीनी-जापानी माहिर हैं।

हाल के भीतरी द्वार पर शिक्षा-मन्त्री कुओ-मो-रो अतिथियों का स्वागत कर रहे थे। पौने आठ बजने ही वाले थे। भारतीय डेलिगेटों की बसें शायद अन्त में पहुँचीं, क्योंकि हाल लोगों से खचाखच भरा था। मेजें आहार की वस्तुओं—लेह्य, चोष्य, पेय, खाद्यादि—से लदी थीं। अपनी-अपनी कतार में, अपनी-अपनी विनिश्चित मेजों के सामने। हम भी अपनी लम्बी मेज़ के सामने अपनी कतार में जा खड़े हुए। मैं भारतीय कतार के सिरे पर था।

बार-बार कुओ मो-रो का शान्तिसूचक आनन्दसम्मत मुँह याद आने लगा। इतिहासकार, उपन्यासकार, कवि, कितना सुदर्शन, कितना मधुर भाषी, कितना आकर्षक है। शान्तिमना, प्रसन्नवदन, शिवतम।

कहा न कि प्रीतिभोज 'बुफे' किस्म का था, इससे लोग खड़े थे। उस प्रशान्त हाल को अपनी कतारों से भर रहे थे। सभी सब को देख रहे थे। काले, सफेद, पीले, गेहुएँ सभी। सभी के लिए समारोह असाधारण था। जहाँ नज़रें मिलतीं, चेहरे खिल उठते, खिले चेहरों पर मुस्कराहट दौड़ जाती। इन्सान अपनी मूल विरासत की विपुल धारा में अनायास बह रहा था। उस समारोह में वे भी थे जो सदियों से दूसरों की तृष्णा के शिकार हो रहे थे, जो औरों के साम्राज्यवाद की बुनियाद थे, जो अद्यावधि अनजानी कुर्बानियां किये जा रहे थे, और वे दूसरे भी जिनके देशवासी जंगबाज़ी में माहिर थे, दूसरों को कुचल डालने का ही जिन्होंने व्रत लिया था, साम्राज्यवाद के वल्ले गाड़ना ही जिनके जीवन का इष्ट था। पर दोनों ही समान मानवता के पोषक थे। दोनों ही इन्सानी-विरासत को बचा लेने के लिए कन्धे-से-कन्धा मिलाये इस साँझ खड़े थे, उस स्वर्गीय-शान्ति के हाल में।

सहसा बैंड बज उठा और हल्की फुसफुसी आवाज, जो हाल में गूंज रही थी, बन्द हो गई। घड़ी देखी, आठ बजने ही वाले थे, बस दो मिनट और बाकी थे। ठीक आठ बजे बैंड क्षण भर बन्द हुआ और एकाएक फिर बज उठा। सारी आँखें सहसा पूरब के बरामदे के शिरोद्वार पर जा लगीं। मनवता का लाड़ला, अभिनव आशा माओ हाल में दाखिल हुआ। हाल, माओ जिन्दाबाद! की आवाज़ से, गूंज उठा। सहस्रों कण्ठों से उठी आवाज़ बारबार उस शान्ति-संकल्पमना जनसंकल भवन में प्रतिध्वनित होने लगी।

पीला-गोरा मझोले कद का माओ। चेहरे पर हल्की सहज मुस्कराहट जो खूँखार भेड़िये तक पर छा जाय। भरा बदन, ललाट ऊँचा चौड़ा, काले बाल पीछे लौटे हुए। चीनी, सहज चीनी, हृदय के निम्नतम तल तक चीनी। देखता रहा, गुनता रहा—क्या यही माओ है ? अमनुजकर्मा माओ, अलादीन के चिराग के जिन्न से कहीं समर्थ, जिसने अमरीका जैसी महाशक्ति की पीठ पर रहते कोमिन्तांग के दैत्य को देश से निकाल

फेंका।

विनोद जी, इस सरल नर का दर्शन इतना अकृत्रिम, इतना सहज था कि अकिंचन से अकिंचन प्राणी भी उसके पास अनायास चला जाय, उससे खौफ़ न खाय। 'महाभूतसमाधियों' से प्रकृति ने उसकी काया सिरजी है और जिस साँचे से उसे ढाला निश्चय ही उसे ढालकर तोड़ दिया, वरना उसके-से और होते। जितना ही उसे देखता उतना ही उसके किए कर्मों के पन्ने आंखों के सामने उघड़ते आते। जापानियों से लोहा, को-मिन्तांग से संघर्ष, हज़ारों मील का वह उत्तर से दक्खिन, पच्छिम से पूरब तक का विजय-मार्च, जनता का रूप-परिवर्तन, जमीन का नया विधान, अर्थशास्त्र का नया निरूपण, क्रूर नदियों का नियंत्रण, क्रूरतर राष्ट्रों के षड्यन्त्र का सामना, चीन में नई दुनियाँ की सृष्टि, कोरिया का मोर्चा और सबसे बढ़कर संसार का शान्ति का मोर्चा।

सभी उचक रहे थे, सभी अपने पंजों पर थे, सारे नर-नारी, उसे देखने के लिए। दूज के चाँद को जैसे जनता आंखों से पीती है, राष्ट्रों के वे प्रतिनिधि उसीप्रकार माओ की स्निग्ध आभा का पान कर रहे थे। अनेक लोग एक-एक कर धीरे से ऊँचे बरामदे की ओर चले जा रहे थे, जहाँ से माओ का दर्शन सहज था। मैं भी वह लोभ संवरण न कर सका। धीरे से गया, कुछ मिनट खड़े होकर वहाँ उसे निहारता रहा, फिर अपनी जगह लौट कर खड़ा हो गया।

इस बीच माओ अतिथियों के स्वागत में बोलता रहा। सुसंक्षिप्त भाषण था। हम लोग, जो अपने देश में लम्बे भाषणों के आदी हो गये हैं, इसी कारण उन भाषणों का असर हमारे ऊपर नहीं पड़ता, उसे सुसंक्षिप्त ही कहेंगे। पर उस भाषण में मन्त्रबल था। चीन के शान्ति-प्रयास की चर्चा थी। मानव-जाति के शान्ति-प्रयास की, मानव-जाति के परस्पर सद्भाव और स्नेह की सत्कामना की गई थी।

फिर माओ ने अतिथियों का स्वागत किया, भोजन का प्रस्ताव किया। भोजन आरम्भ हो गया। उसने जब प्रस्तावतः अपना शराब

वाला गिलास उठाया, हाल में गिलासो की परस्पर टनटनाहट से ध्वनि की मधुर तरंग उठी। मैं तो पीता नहीं और वहां अनेक थे जो नहीं पीते थे—सारे पाकिस्तानी प्रतिनिधि परहेज कर रहे थे, और हमने अपने सन्तरे के रसभरे गिलासों को ही परस्पर टकरा कर अपने उत्साह और स्नेह का प्रदर्शन किया।

इतने जन-परिवार मे मिल सकना असम्भव था। इससे प्रतिनिधि-मण्डलों के प्रधानों से माओ ने हाथ मिलाया, उनके प्रति अपनी शुभ-कामना प्रकाशित की। एक-एक कर वे उससे हाथ मिलाते निकलते गये। लोग उचक-उचक कर देखते रहे। बीच-बीच में 'माओ जिन्दाबाद !' 'शान्ति जिन्दाबाद !' के नारे भी बुलन्द होते रहे।

थोड़ी देर में, नौ-सवा नौ बजते-बजते सब का अभिवादन कर माओ चला गया। आज जाना, कौन वह शक्ति है, कैसा आकर्षण, जिस-का नाम मात्र, याद मात्र चीनियो में अमित उत्साह भर देता है। माओ चला गया, पर देर तक उसके प्रभाव की स्निग्ध-धारा हमारी कतारों के बीच बहती रही। चीन के प्रधान मन्त्री चाउ-एन-लाइ और सेनापति चू-देह हमारे बीच घूम-घूम हमसे स्मित हास्य द्वारा बोलते रहे। उनके बीच सुनयात-सेन की पत्नी सुंग-चिंग-लिंग का निर्मल चेहरा जब-तब झलक जाता और जब-तब चीनी शान्ति-समिति के प्रधान कुओ-मो-रो का।

भोज व्यस्तता से चल रहा था, बीच-बीच में पेय की घूंट। मैं भारतीय प्रतिनिधियों की कतार के सिरे पर था और मेरे बाद ही उसी मेज से पाकिस्तानी प्रतिनिधियों की कतार शुरू होती थी। मेरी बगल में ही पंजाब सरकार के भूतपूर्व मन्त्री सर सिकन्दर हयात खाँ की लड़की खड़ी थी। मुझे मांस से सदा से परहेज रहा है। स्वाभाविक ही मैंने पूछा कि मेज पर चुनी चीजों में कौन-सी निरामिष है ? किसी ने बताया कि जहाँ पाकिस्तानी प्रतिनिधि हों, वहां जान लेना चाहिए कि सब कुछ निरामिष ही, सब कुछ सुराहीन पेय ही होगा क्योंकि उनके लिए 'हलाल'

मांस ही परसा जा सकता है, और उस दिशा मे सन्देहवश उन्हें संकोच हो सकता है। मेरे बायें बाजू कुछ दूर से ही निरामिष भोजन चुन लिया गया था। पर सारे खाद्यों का दर्शन मांसवत् ही था। गोश्त की शक्ल में ही सभी साग बनाये गये थे। सामने जो लाल क़तरे रखे थे, कोई ऐसा नहीं, जो धोखे से उन्हें गोमांस न समझ ले। पर वे सारी चीज़ें वस्तुतः सेम के बीज, पालक, मशरुम आदि की बनी थीं।

देर रात गये भोज समाप्त हुआ। होटल लौटा और लिखने बैठ गया। बार-बार उस महामना मानव की याद आ रही है, जिसने उस देश की अफ़ीमची, काहिल, चारों ओर से पिटी जनता में नयी जान डाल दी है। उसके पास लफ़्फ़ाजी कम है, कर्मठता अधिक है। उसकी आवाज़ क़ौम की आवाज़ है, क्योंकि वह क़ौम की नींद सोता, क़ौम की नींद जागता है।

बन्द करता हूँ अब यह ख़त, विनोद जी, वरना जवान रात बग़ैर सोये सरकी जा रही है। सरक जायेगी। खिड़की पर बैठा हूँ, खिड़की प्रधान सड़क पर नहीं, पीछे खुलती है, और आसमान नीचे की लाख-लाख बत्तियों से घुटा-सा तारों की आँख झांक रहा है। अभी शायद अपने यहाँ शाम होगी, रेशमी धुंधलका छाया होगा। और आप दिन-रात की उस सन्धि पर आसमान ज़मीन के कुलाबे मिला रहे होंगे। मुबारक संघर्ष आपको! यक़ीन रहे, रात का अंधेरा छँटेगा, पौ फटेगी।

भगवत शरण

श्री बैजनाथसिंह 'विनोद',
५०।१६० कलां, बनारस।

पीकिंग,
१-१०-५२

प्रियवर,

चीन आते ही आपको लिखना चाहा था, मुनासिब भी था क्योंकि स्वदेश छोड़ते समय आपका ही भारतीय घर था, जहाँ से मैंने विदा ली। पर विदेश की व्यस्तता, फिर विशेष अवसर की, जिससे आज से पहले न लिख सका। ऐसा भी नहीं कि लिखता नहीं रहा हूँ। घर लिखा है, चित्रा-पद्मा को लिखा है, मित्रों को लिखा है, पर सही, आपको लिखना सबको लिखना-सा तो नहीं था।

इस प्रकट अनौचित्य का एक कारण और था। वह उस विशेष अवसर की प्रतीक्षा, जिस सम्बन्ध में आपको लिख सकूँ। वह अवसर अब मिला। आज जो देखा है उसका बयान क्या करूँ, कहाँ तक करूँ, नहीं समझ पा रहा हूँ। विशेषकर इसलिए कि आपका वातावरण, मुझे डर है, कुछ ऐसा है कि साधारणत जो बात लिखने जा रहा हूँ, उसका वहाँ विश्वास नहीं किया जाता। इधर 'नया-समाज' का, जिसके प्रियपात्र का (जिसके प्रियपात्र लेखकों में इधर सालों से माना जाता रहा हूँ, स्वयं आप जिसके प्रतिष्ठाताओं में हैं) रुख, विशेषकर उसके सम्पादकीय नोटों का जो अत्यन्त अनुदार रहा है, उससे आपके विचारों पर भी उनका असर हो इसका भय रहा है। भाई सेंगर जी ने जिस कठ-मुल्लापन के साथ चीन का विरोध करना शुरू किया है, वह न केवल सहिष्णुता में अभारतीय और अनुदार है, वरन् डरता हूँ, गांधी जी की भावसत्ता से असत्य भी है। वह लड़ाई तो सेंगर जी के साथ लौट कर ही लड़ूँगा, लड़नी ही है, पर उस कारण आपको न लिखूँ, यह संभव

न था। फिर आपकी असाधारण उदारता, उचित को साहसपूर्वक कहने की प्रवृत्ति ने मुझे बार-बार खींचा, इसलिये भी कि यदि आपका वातावरण—आप नहीं, वातावरण—चीनविरोधी हो तो इस पत्र का लक्ष्य वस्तुतः वही होना चाहिये। अतः यह पत्र।

आरम्भ में ही सावधान किये देता हूँ, पत्र लम्बा होगा, क्योंकि उसकी सामग्री प्रभूत है। सामग्री की अनवरत इकाइयां भी, उसका अन-न्यतः—एकतः प्रवाह भी, विविधता भी, और इनसे ऊपर उसकी परिधि का विस्तार, इससे भी ऊपर उसकी हमारे अंतरंग की गहराइयों में व्यापकता। जो कह सकूँगा वह उसकी सूची मात्र होगी, आभास मात्र, जो देखा है। आप जानते है, दर्शन और व्यंजना में गुणतः अन्तर है। उनके अपाट्य अन्तर को गोस्वामी जी ने जिस मेधा से व्यक्त किया है वह अभिव्यंजना की इन्सानी विरासत है—गिरा अनयन, नयन बिनु बानी—काश कि आँखों को जबान होती, जबान को आँखें होतीं।

जो देखा उसका विचिन्तित घुटा विवरण नहीं दे सकूँगा, नहीं देना चाहूँगा। क्यों, यह एक अंग्रेजी परम्परा द्वारा व्यक्त करना चाहता हूँ। 'डाइजेस्टेड' या 'पचाया हुआ' विवरण अनेक बार अकृत सत्य को उबाल कर विकृत कर देता है, बदल देता है (क्योंकि पाचक दोनों के बीच आ जाता है) क्योंकि 'डाइजेश्चन' (पाचन) और 'कुकिंग' (पकाने) में अधिक अन्तर नहीं होता। इस कारण डाइजेस्टेड विवरण न देकर थोड़ी 'रिपोर्टिंग' मात्र करूँगा, जिससे तथ्य और आपके बीच मैं न आ जाऊँ। वैसे तो मेरे विचारों का आपके विचारों से विरोध होते हुए भी आप मुझे सच बोलने का श्रेय साधारणतः देते ही हैं, जो सुनने वाले से कहने वाले के लिये बड़े भाग्य की बात है।

सुबह के चार बजे हैं, वस्तुतः दूसरी तारीख के, यद्यपि तारीख मैंने घटनाओं के संबन्ध से 'पहली' ही दी है। अभी लौट कर आया हूँ। तियेनान मेन—'स्वर्गीय शान्ति का द्वार'—से अभी पौने चार बजे, रात आसमानी चंदोवे के नीचे गुजार कर। और जो देखा है दिन में रात में

वह यद्यपि अमर सम्पदा वाला है, बासी न हो जाये इससे लिखने बैठ गया। अभी, चार बजे ही।

सुबह देर से उठा था, इसलिये कि उस पिछली रात देर से सोया था, पिछली रात की दावत में शरीक होने की वजह, देर गई रात तक वतन के प्यारों को खत लिखते रहने की वजह। और स्नानादि से निवृत होते आठ-साढ़े आठ बज गये थे। साढ़े नौ बजे चीनी राष्ट्रीय दिवस के समारोह में शामिल होना था। आठ बजे ही उन पत्रों पर हस्ताक्षर करने पड़े जो भारतीय प्रतिनिधियों की ओर से उस सुअवसर की बधाई में मूल हिन्दी में, अंग्रेजी अनुवाद के साथ, राष्ट्रपति माओ त्से-तुंग, प्रधान मंत्री, और शान्ति-समिति के प्रधान को भेजे गये।

सुबह सुहावनी थी। हल्के कुहरे की झीनी चादर छेद कर नये सूरज ने जमीन को हजार हाथों भेंटा; इन्सान की दबी मुरादें जैसे सहसा बर आईं। मौसम की मायूसी और मन की मायूसी में कुछ खासी निस्वत है, यद्यपि सदा मौसम की मायूसी मन की मायूसी का कारण नहीं होती। पर मौसम का साया बेशक मन के शीशे पर पड़ता ही है। और हल्की धूप का जो असर कुहरा ढकी जमीन पर होता है, मुस्कराहट का वही मन पर होता है। सूरज झांका, जमीन इतराई, इन्सान मुस्कराया, मायूसी फटी।

और उस तियेनान मेन के मैदान में हजारों-हजारों इन्सान मुस्करा रहे थे। आलम की रौनक जैसे उस लाल जमीन पर बरस रही थी। उस लंबे चौड़े मैदान में जिधर जहां तक नजर जाती थी, लाल रंग किसी न किसी रूप में आंखों पर छा जाता था, स्वागत के मेहराबों के रूप में, लहराते झंडों के रूप में खंभों-दरवाजों के लाल कपड़ों से ढके जिस्म-बुर्जियों के रूप में, शान्ति के श्वेत कबूतरों की पृष्ठभूमि में, रात में अलंकारत. जलने वाले विशाल रेशमी कंडीलों के रूप में। लाल रंग कुछ आज की क्रान्ति का ही नहीं, चीन का अपना-पुराना रंग है, जिसे चीनियों ने सदा जिन्दगी का रंग माना है, चुहल का, उफनते जीवन का रंग। उसके उद्दाम उल्लास को हल्का करने के लिये, संयम में लाने के लिये

चीनी चटख लाल रंग के साथ हरा का इस्तेमाल करते हैं, पर हरा लाल को नहीं दबा पाता, मुतलक नहीं, जैसे मौत ज़िन्दगी को नहीं दबा पाती, उसके हज़ार खूनी पंजों-हरबों के बावजूद।

उसी लाल समां के बीच हम 'शान्ति' के उस द्वार के सामने जा खड़े हुए। सारे देशों के प्रतिनिधि मिले-जुले खड़े थे। पक्के वितान-मंडित द्वार के नीचे, सामने दोनों ओर दूर तक उतरती चली गईं लाल सीढ़ियां (सोपान-मार्ग) थीं। शान्ति-सम्मेलन के ३७ राष्ट्रों के प्रतिनिधि-दर्शकों के साथ इस राष्ट्रीय समारोह में भाग लेने पूरब-पच्छिम के स्वतंत्र राष्ट्रों के अनेक प्रतिनिधि भी वहां खड़े थे। चीनी जन-राष्ट्र की यह तीसरी जयन्ती थी। दिलों में न समा सकने वाला उल्लास हवा में भर रहा था। हमदर्दी, सेकसरिया जी, बड़ी चीज़ है, आसमान से ऊँची, आसमान को भर देने वाली। मुस्कराहट संक्रामक होती है, फैलती चांदनी की तरह चेहरे-चेहरे पर छिटक जाती है। और मुस्कराहट इन्सानियत की बुनियाद हमदर्दी का नूर है, उसका प्रतीक जयन्ती हमारी न थी, उन किसी की न थी, जो दूर दराज़ से आये थे, पर वह क्या था जो हमारे भीतर भी उछला पड़ता था, उनके भीतर भी जो चीन के न थे ? क्या मुझे कहना होगा ! कह सकूंगा ?

गोरे-काले, पीले-गेहुएं लोग मिले-जुले खड़े थे। जब कभी नज़रें मिलतीं, प्यार की मुस्कराहट चेहरों पर दौड़ जाती। चेहरों पर जिन्होंने आज से पहले एक-दूसरे को कभी न देखा था, जो आज के बाद एक-दूसरे को कभी न देखेंगे। पर मानवता की वह एकजाई दाय मिली विरासत, हमदर्दी जो कभी सिखाई नहीं जाती, हमें पुलकित कर रही थी। लोग हुलस रहे थे।

सामने, प्रधान सड़क के दोनों ओर, दूर तक जनवाहिनी खड़ी थी। सेना के विविध स्कन्ध फैले चुस्त खड़े थे, उस मंचू सम्राटों के राजद्वार के सामने, जिसकी खपड़ैली इमारत आज चीनी सरकार की निरीक्षण भूमि है। हमारे ठीक सामने हज़ारों की संख्या में बैन्ड सेना मौन खड़ी

थी, उसके दोनों बाजू पैदलों की अचल कतारें।

ठीक दस बजे दगती तोपों की आवाज जब कानों को बहरा करने लगी, चीनी जनतन्त्र का अभिराम जादूगर द्वार पर आ खड़ा हुआ। लाखों आँखें भौंरों की कतार-सी घूमती उधर जा लगीं। सरकारी कतार के बीच माओ खड़ा था, वह अकिंचन धीरवर, जो जब चीन का एक कोना पकड़ले तो सारा चीनी संसार एक साथ उठ जाय।

राष्ट्रपति का अभिवादन आरम्भ हुआ। सेनापति ने 'दिन का आदेश' प्रसारित किया। स्वयं वह खुली जीप पर खड़ा सेना के प्रतिनिधि का सैल्यूट लेता पच्छिम से पूरब निकल गया, फिर लौटकर उसने माओ का अभिवादन किया। फिर तो एक के बाद एक सेनायें मार्च करतीं, राष्ट्रपति का अभिवादन करतीं निकल गईं।

गूज-स्टेपिंग करते हुए पहले पदाति निकल गये, उसके पीछे मोटर-सेना, फिर घुड़सवार। नन्हें-नन्हें घोड़े, गधों की शक्ल के, उन पर नाटे-नाटे चीनी सवार। देखते ही हँसी आ जाय। हँसी कुछ लोगों को आ ही गई। मेरे पास ही एक यूरोपीय सज्जन खड़े थे। वे मुस्कराये। मेरी मुद्रा शायद गंभीर बनी रही। उन्होंने कुछ स्वयं झेंपते हुए पूछा—'देखा?' मैंने कहा—'देखा, जिन्होंने कभी सारा मध्य एशिया अपने इन्हीं घोड़ों की टापों के नीचे ले लिया था। इन्होंने ही एक बार एशिया लाँघ डैन्यूब की राह वियना का द्वार खटखटाया था, पवित्र रोमन सम्राट् को उसी के महलों में बन्दी कर लिया था, और इन्हीं की सेना ने चंगेज के इशारे पर उस सिन्धु नद को पार कर लिया था जिसके किनारे खड़े हो सिकन्दर ने कभी सात धार आसू रोये थे।' यूरोपीय सज्जन कुछ सहम गये।

अब दूसरी सेनायें चलीं, पैराशूट, वायुयान बेधी, टैंक और जाने क्या-क्या। अभी थकी आँखें एक के बाद एक निकलने वाली विजयवाहिनी के स्कन्धों को ही निहार रही थीं कि धीरे-धीरे एक गंभीर ध्वनि कानों में भरने लगी। गंभीर, घनी-गंभीर ध्वनि जो आकाश में व्याप्त हो चली

थी। जो नज़र उठाई तो देखा कि मन की-सी गति से जेट प्लेन (बमबाज़) पूरब से पच्छिम की ओर अपने पंख पीछे किये उड़े जा रहे हैं। त्रिकोण सी बनती एक के बाद एफ ४२ टुकड़ियाँ देखते ही देखते ऊपर से निकल गईं। फिर ४२, और फिर। अभी उनकी कर्णभेदी गूँज कानों में भरी ही थी कि सामने की बैंड सेना के नगाड़े बज उठे। और धीरे-धीरे वह अपनी दाहिनी ओर बढ़ती हुई सहसा घूमकर क्षण भर को सामने के राजपथ पर आ खड़ी हुई। फिर बैंड बजाती, मार्च करती आगे निकल गई।

इससे कुछ राहत मिली। राहत, इसलिये, मेरे मित्र, कि मैं काफी बुजदिल हूँ। किसी को हाथ में ब्लेड लिये देखता हूँ, तो घबड़ाहट होती है। लगता है कहीं इधर-उधर न रख दे, किसी के लग न जाय। और यह भयंकर खूनी सेना का सिलसिला देखा, तो जैसे सिर चकरा गया। सेनाओं की मार से संसार की जनता कितनी व्याकुल है, यह आपसे कहना न होगा। इसी से इन प्रदर्शनों से मुझे खासी अरुचि है। मैं अपने देश में भी इस प्रकार के प्रदर्शनों से अलग रहा हूँ। यद्यपि यह जानता हूँ कि अनेक बार इन सेनाओं की आवश्यकता होती है और धर्मसंकट में हाथ पर हाथ धरे कायर बने बैठे रहने से बेहतर इनसे काम लेना है। इतिहास की बात आपको याद होगी कि अनेक बार शान्ति के क़ायल होते भी हमने अपनी आज़ादी की रक्षा के लिये इंच-इंच पर हमलावर की राह रोकी है। चप्पे-चप्पे ज़मीन पर कठों, मालवों, शिबियों ने फसल काटने की हँसिया फेंक हाथों में तलवार ले कभी सिकन्दर की राह रोकी थी। इन्हीं चीनी सेनाओं को संसार के सबसे भयानक आतंकवादी राष्ट्र को कोरिया के मैदानों में लोहे के चने चबवाते अभी हाल हमने देखा है।

पर निश्चय संकट और संहार की प्रतीक सेनाओं को देखकर मेरे भीतर भय का संचार हो आता है। इससे बैंड की आवाज सुन मन बँटा और चित्त कुछ स्थिर हुआ। आगे के प्रदर्शन बहुत मानवीय थे।

ख़ासकर जब सामने से लड़कियों की एथलेटिक सेना निकली तो जलते हृदसे पर जैसे शीतल वायु का संचार हो गया। सेना मात्र लड़कियों की थी। बगुले के पंख-सी धवल कमीज़ और जाँघिए में कसा शरीर नारीत्व को एक नया लेबास दे रहा था। नारी को अनेक रूपों में. वेषभूषा के अनेक उपकरणों में सजा मैंने देखा था पर इस सादे लेबास में वह इतनी सुन्दर दीख सकती है, इसकी कल्पना भी न की थी।

अपने देश में विशेषतः, यद्यपि अन्यत्र भी कुछ कम नहीं, नारी तमाशे की चीज बन गई है। या तो हम उसकी अत्यधिक पूजा करते हैं या सर्वथा उपेक्षा। वस्तुत' नाम की पूजा उपेक्षा का दूसरा रूप है। नारी को सर्वथा एक दूसरे क्षेत्र में परिमित कर देना उसकी सत्ता का गला घोट देना है। अपने यहाँ अधिकतर यही हुआ है। आश्चर्य कि इस धर्मप्राण देश में, इस तथाकथित आचार संज्ञक जीवन में, वस्तुतः नारी के प्रति अपना स्नेह कितना घिनौना है, कहना न होगा। हमने सदियो से उसे केवल अपने भोग की वस्तु बना लिया है। उसके बाहर यदि उसका कोई विस्तार है, तो घर के नौकर-दासी के रूप में ही।

वरन सदियों हमने अपने साहित्य में जो उसका प्रतिबिंब दिया है, वह कितना घिनौना है यह आपसे अनजाना नहीं है। संसार के किसी साहित्य में, किसी भाषा में नारी को कामरूपिणी संज्ञा नहीं मिली। उसके 'कामिनी', 'रमणी', 'प्रमदा' आदि नाम हमारी इसी घिनौनी प्रवृत्ति के सूचक हैं। हमारा सारा रीति-साहित्य इसी विचारधारा द्वारा लांछित है। आज भी हमारे साहित्य में—उपन्यासों, काव्यों में—एक-मात्र इसी रूप-रस का प्राधान्य है और हम जो इस बात पर जोर देना चाहते है कि यह भावना अश्लील कामुक है, उन अन्य अनेक सात्विक लक्षणों से अपने साहित्य को मुखरित करो जो अब तक उपेक्षित पड़े है और जिनमें रस की कमी नहीं, तो हमें 'प्रचारक', 'रेजिमेंन्टेशन' करने वालों की उपाधि मिलती है। सेक्सहीन पुस्तक की हिन्दी में क्या स्थिति है उसे याद कीजिये और सिर पीट लीजिये।

नारी को नायिका-बोध से अलग जसे हम सोच ही नहीं सकते। उस नायिका, कायिक स्तर से दूर लोहे के घन से सँवारे, साँचे में ढले सुघड़ शालीन चीनी नारी के इस एथलेटिक सौन्दर्य को जो हमने देखा, तो आँखें खुल गईं। निहारता रहा। चण्डी का काल्पनिक रूप शरीरी बन गया था। किसकी हिम्मत है, जो इस स्वस्थ नारीत्व को सिर न झुका दे, कामुकता, रमण आदि से सार्थक संज्ञा 'कामिनी', 'रमणी', 'प्रमदा' आदि से इसे सम्बोधित करे? और मिलाइये जरा संसार की लिजलिजी तितलीनुमा नारियों को इनसे। कालिदास ने 'कुमारसम्भव' में उमा का जो चित्र खींचा है।

"यदुच्यते पार्वति पापवृत्तये न रूपमित्यव्यभिचारि तद्वचः।"

वह इस चीनी नारी के पक्ष में कितना सही है, कहना न होगा।

अभी इन्हीं भावनाओं से भरा था कि 'युवा-पयोनियर्स'—तरुण-तरुणियों की लाल रूमाल वाली सेना निकली। सफेद पैंट पर सफ़ेद कमीजें, छवि निहारता रह गया। सहसा उन्होंने हज़ारों गुब्बारे एक साथ उड़ा दिए और अभी हम उस अनूठे करतब को देख ही रहे थे कि आसमान हज़ारों परिन्दों से ढक गया। लड़कियों ने बड़ी खूबी से शान्ति के प्रतीक कबूतर (जिस फ़ाख्ता के चित्र सरकारी-गैर सरकारी इमारतों पर शहरों-गाँवों की दूकानों में, ओढ़ने-पहनने के वस्त्रों पर, झंडों-पताकों पर हम सर्वत्र देखते आये थे) छिपा रखे थे जिन्हें उन्होंने एकाएक अब उड़ा दिया और उनके डैनों से उस कड़ी धूप में बड़ी सुखद शान्ति मिली। अनेक कबूतर तो भटक कर हमारे पास उतर आये। रोहिणी भाटे, पूना की नाट्यशाला की संचालिका, पास ही खड़ी थी। उनके पास एक जा पहुँचा। पास ही पाकिस्तान के, अखण्डित पंजाब के मुख्य मन्त्री सर सिकन्दर हयातखां की पुत्री और पुत्रवधू (पंजाब के कभी के मन्त्री शौकत हयात खाँ की पत्नी) वहीं खड़ी थीं। रोहिणी ने पाकिस्तान के साथ सद्भाव और मैत्री के प्रतीक उस कबूतर को भारतीय नारी की ओर से तत्काल भेंट कर दिया। स्नेह और साधु सौजन्य का वह अमूल्यक्षण था।

आगे का दृश्य अलभ्य था। उसमें सेना के आतंक का स्पर्श तक न था। अपार उमड़ती जनता का वह जुलूस था, आंधी-तूफान की शक्ति लिये, अपना बोध आप कराने वाला। उत्साह और अपनी शख्सी इकाई का भेद भुला देने वाली, एकस्थ मानवता का समन्वित प्रवाह थी वह जनता। गांधी प्रेरित सन् बीस के जन समूह को याद कीजिये और उसका बीस गुना उत्साह, बीस गुनी जन संख्या, शान्ति-कोलाहल की कल्पना कीजिए, बस वही अगला दृश्य था। स्कूल के बच्चे, कालेजों के तरुण, रंग-बिरंगे झंडे, कागज़ के कबूतर, लाल-पीले-नीले-हरे बैलून और झंडे लिये चीनी राष्ट्र-निर्माताओं और मार्क्सवाद के नेताओं की तस्वीर हवा में लहराते आगे बढ़े। उसके बाद अल्पसंख्यक जातियों के जन-संकुल परिवार निकले, जिनके वस्त्र उनकी अपनी-अपनी कौमियत का परिचय दे रहे थे। फिर मजदूरों, कामगरों, किसानों के और फिर दुकानदारों, जुलाहों, कारखानों के मालिकों, और विविध पेशेवरों के, जिनका उल्लेख यहां असम्भव है। वह जनराष्ट्र जैसे २५ लाख की पिकिंग की उस जन-संख्या में सहसा उतर आया था।

माओ की विजय का सबूत, सेकसरिया जी, न वहां की सेनाओं में है, न स्तंभों पर खुदी प्रशस्तियों में। वह चीनी हृदयों की गहराई में है। कैसे व्यक्त करूं वह प्रभाव जब पायोनियरों में से अनेक छोटे-छोटे लड़के-लड़कियां तियेनान मेन के सामने पहुंचते ही द्वार-पथ की ओर दौड़ पड़े थे और ऊपर मंचुओ के चंदोवे के नीचे उस ऊंचाई पर जा चढ़े थे जहां माओ अपने सहकारियों के साथ खड़ा सेना की सलामी ले रहा था, जनता के आकुल हृदयों की बाढ़ जहां परेड के बहाने अपने कृतज्ञ उच्छ्वास हवा में मिला रही थी। बालक-बालिका वहां जा चढ़े और निर्भीक स्वाभाविक प्रेरणा से उन्होंने उस अमनुजकर्मा माओ के हाथ पकड़ लिये। बालविह्वल माओ का चेहरा उसके स्पर्श से सहसा खिल उठा हजारों कैमरे चटक उठे। ऐसा दृश्य आदमी को जीवन में अनेक बार देखने को नहीं मिलता।

माओ कितना सरल, कितना आर्द्र, कितना बालवत्सल, कितना महान् है। चीन के उत्तर-पश्चिमी छोर से कभी वह कोमिन्तांग की गोलियों की बौछार के सामने मार्च करता कान्तोन के पार्वतीय समुद्र तक जा पहुँचा था और उसके पैरों की चाप के सामने वियानसान पहाड़ों की ऊंचाइयां ढुलक पड़ी थीं। वही माओ बच्चों के हाथ पकड़े उस जन-प्रदर्शन के बीच खड़ा था, परम्परा की ऊँचाई पर, परन्तु मानवता के समुद्र के किनारे, मानव हृदय के कितना निकट, उसकी आर्द्र गहराई में कितना डूबा! जो आवश्यकतावश फौलाद-सा कड़ा हो सकता है, वही कुसुम की नोक से भिद जाने वाला कितना नरम भी—वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि!

दस से दो बजे तक लगातार चार घंटे विस्तृत सोपान-मार्ग की संचोत्तरमंचों पर खड़े चमकती धूप में हम इन्हीं मानवी आर्द्र धाराओं से सिंचते रहे। कितनी जनता समुद्र की एक पर एक उठती-गिरती वेला की भांति सामने से बह गई, नहीं कह सकता। शायद पांच लाख, शायद दस, शायद और अधिक, कौन गिन सका? और जो उसका तांता बन्द हुआ—और उसका तांता इसलिये बन्द नहीं हुआ कि उसकी इकाइयों का सभार घट चुका था, बल्कि इसलिये कि विनिश्चित काल अब अपनी परिधि पार कर चुका था—तो सहसा निद्रा टूटी। सभी आंखें तियेनान मेन की रेलिंग की ओर फिरीं, जहां वर्तमान चीन का निर्माता माओ सिर से टोपी उठाये हमारा अभिवादन-प्रत्यभिवादन करता इमारत के कोने की ओर बढ़ता था रहा था। फिर-फिर उसने हमारा अभिवादन किया। और तभी हम अपनी भीगी आंखें पोंछते अपने आवास को लौटे। हृदय भरा था, कान भरे थे, कल्पना बोझिल थी। किसी के पास शब्द न थे। सब चुपचाप भीतर उठती-मंडराती भावनाओं को सम्भाल रहे थे।

बहुत लिख गया। प्रियवर, लिखना चाहता था, जैसा शुरू में कह चुका हूं, रात का जिक्र भी, पर उंगलियां थक गई हैं और लिखना

बहुत है। और अगर अपनी उंगलियों की थकान से नहीं तो उस अभद्रता के डर से तो पत्र खत्म करना ही होगा कि यह बेतरह लम्बा होगया है और इसे पढ़ते आप थक जायेंगे। पर विश्वास दिलाता हूँ कि जो देखा-सुना, उसके अनुपात में मेरा यह वर्णन गन्धमात्र भी नहीं है।

अच्छा, अब शाम तक के लिये विदा। सात बज गये हैं, आठ बजे तैयार होकर नीचे भागना है। आज से शान्ति-सम्मेलन का अधिवेशन, गांधी जी की जन्म तिथि के शुभ अवसर पर, शुरू होगा। लौट कर फिर लिखूँगा।

प्रणाम।

श्री सीता राम जी सेकसरिया,
केवड़ातल्ला स्ट्रीट,
कलकत्ता, २६

आपका,
भगवत शरण

पीकिंग,
२-१०-५२

प्रियवर,

आपको आज ही सुबह मैंने लिखा और चाहा था कि इस पत्र की बातें भी उसी पहले पत्र में लिख दूँ पर प्रायः लिखते ही लिखते भागना पड़ा था। इसलिये फिर लिख रहा हूँ।

पिछले दो दिन—यानी रात और दिन, फिर रात और दिन—हमारे लिये ऐसे अनवरत रहे हैं कि हमने उनकी सन्धि नहीं जानी है। कार्य-क्रम और व्यस्तता कुछ ऐसी रही है कि तारीखों के बदलने का कोई भान नहीं हुआ है। पहली रात, राष्ट्र-दिवस की पिछली सन्ध्या, राष्ट्रीय दावत में बीती थी, अगला दिन राष्ट्रीय परेड और सैन्य-निरीक्षण में और अगली रात नृत्य समारोह में; फिर आज का दिन गांधी-जयन्ती और शान्ति-सम्मेलन के उद्घाटन में। गरज कि रात दिन में समाती गई है, दिन रात में और हमें उनके जाने-आने का कोई एहसास नहीं हुआ है। आज की शाम—यानी कि दूसरी तारीख की शाम, क्योंकि कल आज में कैसे और कब बदल गया हमें ज्ञात नहीं पड़ा—सम्मेलन के अधिवेशन से लौटकर नाट्य-गृह गया और जब वहाँ से आकर भोजन करके बैठा हूँ, तब गोया साँस लेने का समय मिला है।

तो, पिछले दिन की बात मैंने शाम को छोड़ी थी। जिक्र परेड से लौट-कर होटल आने तक का ही किया था, अब अगली शाम और रात की बात सुनिये। आठ बजे लियेनान मेन के सामने वाले मैदान में फिर पहुँचे। जहाँ मंचू सम्राटों के उस राज-प्रासाद के सामने परिन्दों को पर मारने की हिम्मत नहीं हुआ करती थी, वहाँ जिन्दगी अँगड़ाइयाँ ले रही थी।

रात तारों भरी थी, जवान रात, पर उसका कलेवर लाख-लाख तारों से, लाख-लाख बत्तियों से रोशन था। बिजली की बत्तियां, उनका अनन्त प्रसार तारों ही जैसा, जैसे तारे जमीन पर उतर आये हों, जैसे गहराते धुंधलके में आसमान कुछ नीचे जमीन के पास सरक आया हो।

और इन लाखों-लाखो तारों के बावजूद लाखों-लाखों बत्तियों के बावजूद, रात की अपनी गहराई थी, अपनी हस्ती जमीन से आसमान तक फैली हुई, स्याह कर्मासिन हस्ती, जो दिल वालों को बेबस कर दे, पाकदामन को गुनहगार।

पर वह गुनाहों की रात न थी, हुलास की थी, इन्सानी रँगरेलियों की, जो जिन्दगी के सामे मौत पर हँसती है। दुनियाँ के हर कोने में मुर्दनी छाई है, इन्सान बेरौनक है, डरा हुआ, कोने में दुबका हुआ। क्योंकि संहार का देव अपने जबड़े फाड़े उसे लील जाने पर आमादा है। इन्सान डरा हुआ कि आसमान में बमबाजों की घर्र-घर्र है, गोले फूट रहे हैं, एटमबम की धमकी गूँज रही है, इन्सानी विरासत खतरे में है—कहीं गोले दायरे से भटक न जायें, कहीं शोले फूस की झोंपड़ियों को छू न लें!

पास ही, चीन की सरहद पर ही, जिन्दगी मौत से लड़ रही है, पर जिन्दगी भी अपनी अहमियत रखती है। उसे भी मार देना कुछ आसान नहीं। पत्थर को तोड़कर हरा तिनका सिर उठाता है, ओले, मेंह के तीर उसे छेदते हैं, लू और प्रतापी सूरज की धूप उसे झुलस देती है, पर पौध नीचे को नहीं लौटती, बढ़ती ही जाती है, एक दिन अश्वत्थ बन जाती है, सिर से छत्र उठाये जिसकी शीतल छाया में इन्सान-हैवान दम लेते हैं, जिसे परसकर लू मलयानिल बन जाती है।

पूरी जिन्दगी मंचुओं की समाधि पर अँगड़ा रही है। रात की गहराइयों से सहसा फूट पड़ने वाले आतिशबाजी के शोलों से, लाखों बिजली की बत्तियों से, लाखों-करोड़ों तारों से आसमान में कुहरा-सा छाया हुआ है। उस शीतल वातावरण में, पहली अक्तूबर की पीकिंग की हल्की

ठंड में, शरत् की गुदगुदाती हवा में लाख-लाख कण्ठों से फूटती काँपती आवाज़ पसरती चली जाती है, अन्तरिक्ष की सीमाओं को छू लेती है।

फटते गोलों की तरह, फटकारती चाबुक की तरह, गरजते बादलों की तरह आतिशबाज़ी फूटती है। उसके शोले तीर की तरह आसमान को चीरते चले जाते हैं, सहसा उसके हजार टुकड़े हो जाते हैं, फिर लमहे भर को जब वे आसमान में टँग जाते हैं, तब पता नहीं चलता कि वे तारे हैं या शोले। आतिशबाज़ी, सेकसरिया जी, आप जानते हैं, चीनियों की अपनी चीज़ है। उन्होंने इसी के लिये बारूद की खोज की थी, उस बारूद की, जिसका इस्तेमाल पच्छिम के राष्ट्रों ने ईसा की राह छोड़ शैतानपरस्ती में किया।

पच्छिम ढलते सूरज की दिशा है। वेद की आवाज़ है—मा मा प्रापत्प्रतीचिका—पश्चिम पतन का मार्ग है, मरीचिका का, उसमें न गिरो! संसार को आलोकित करने वाला प्रकाश, स्वयं सूरज, उधर ढुलक कर डूब जाता है। बारूद का मक़सद ही बदल गया। जहाँ वह आदमी की थकी मेहनत भरी जिन्दगी को उमंग देता, वहाँ पच्छिम ने उसे मौत का ज़रिया बना डाला. गोया मरने के साधन दुनिया में कम थे!

वही बारूद की खोज का पुरातन उद्देश्य उस मैदान में सफल हो रहा था। और उसकी रंगीनियाँ हम अपनी दिन की जगह से निहार रहे थे। हम वहीं 'स्वर्गीय शान्ति के द्वार' के बाजू की सीढ़ियों पर खड़े थे, जहाँ दिन में साढ़े चार घंटे खड़े रहे थे, और सामने के मैदान में, जहाँ दिन में सेनायें खड़ी थीं, वीर गति से गुज़र रही थीं, अब आदमी के पैर आनन्द से थिरक रहे थे। झाँकते तारों के नीचे, फूटते शोलों के साये में, आतिशबाजी के बिखरते, झड़ते रंगबिरंगे फूलों के नीचे लाखों प्राणी अपनी मस्ती के हिलोर से उमँग रहे थे।

यह चीनियों का राष्ट्रीय नृत्य-समारोह था। 'यांको'—नृत्य, जिसे अपने खोये धन को चीन ने फिर से खोज कर पाया है। जिस देश में एक साथ नाचने की प्रथा नहीं, उसमें हुलास का जीवन कैसे लहरा सकता

है ? अपने ही देश में अहीरों-सन्थालों, उराँव-मुंडों में देखिए। उनमें सामूहिक नृत्य होता है, जिन्दगी झूले में पेंग मारती है, शेष राष्ट्र का जीवन जैसे बनावटी बन गया है, अनोखी मरी संस्कृति का, घुटे दम का। एक ज़माना था, जब हम भी सामूहिक रूप से नाचते-गाते थे। धीरे-धीरे हम में आचार की एक खोखली भावना जन्मी, हमने नाच-गान को हेय करार दिया, उनके उपासकों को वर्णेतर कर दिया। हमारे उल्लास के साथ ही तब हमारी कला भी मर गई, उसने वेश्याओं के छज्जों में शरण ली। दोनों एक से घिनौने करार दे दिये गये।

चीनियों ने इस तथ्य को समझा। उन्होंने अपने उस पुराने राष्ट्रीय नृत्य-समारोह को फिर से जिला लिया। लाखों नर-नारी, बाल-युवा-प्रौढ़, उस रात नृत्य के झूले पर सवार थे। उनके दिल की गाँठें खुल पड़ी थीं। रात के उन दस घंटों के लिए उनके पास सिवा हँसी-खुशी के, सिवा प्यार-मुस्कान के और कुछ देने को न था। सारे दुख-अभाव, द्वेष-दुश्मनी, छूत-परहेज़ उन्हें भूल गये थे। संसार उनके लिए व्यर्थ न था, जन्म दुःख न था, आशा मरी न थी। और आनन्द का यह भँवर जब उठता है, तो सहसा खत्म भी नहीं हो जाता, पसरता है, जल की सतह पर दूर फैलता चला जाता है, किनारों तक।

आनन्द की भी लहर होती है, जो हवा की तरह सबको छू लेती है और जब वह छू लेती है, तब आदमी उसका ही होकर रहता है। सहसा कुछ दक्षिणी अमेरिकन (लैटिन अमेरिकन) वहीं हमारे बीच सीढ़ियों पर ही नाचने लगे। चीनी नाच नहीं, अपना नाच। नाच तो आनन्द की अभिव्यक्ति है, उसका स्फुरण। उसके तरीकों में आनन्द का महत्त्व नहीं है, केवल उसके उल्लास में है।

लैटिन अमेरिकनों को देख यूरोपियनों के चरण भी चलायमान हुए, फिर तो मैदान से अलग ऊपर हमारे सोपान-मार्ग पर भी नाच का ख़ासा रंग जम गया। कुछ लोगों ने चीनी यांको की भी नक़ल करनी चाही। लोगों के हाथ पकड़ कर गोलाकार नाचने लगे। पहले दो का वृत्त बना,

फिर चार का फिर पाँच आठ दस का और फिर बीस-बीस पचीस पचीस का। याको में हाथ पकड़े ही पकड़े चलते हुए घूमना भी पड़ता है, पर यहाँ किसको वह नाच आता था, सभी केवल कूद रहे थे। उनमें जब किसी यूरोपियन को विशेष जोश आता तो वह अकेला ही अपने कायदे से नाचने लगता। आखिर उनमें भी तो नाच की प्रथा जीवित है, इससे पैर सही-सही रखने में कोई दिक्कत नहीं थी। दिक्कत हम लोगों की ही थी, भारतीयो, पाकिस्तानियों, लंका-निवासियों की, जो बस घेरे में कूद रहे थे।

मैं अभी अलग ही था, नाच से कतरा ही रहा था कि नीचे की भीड़ में से हमें मैदान में बुलाने की आवाजें आने लगीं। लोग—औरत-मर्द—हमें अपनी ओर खींचने लगे। मैं अब दस बजे के बाद होटल लौट जाना चाहता था, पर जा न सका। लोगों ने नाच में समेट ही लिया। आगे हमारी दुभाषिया वांग, पीछे मैं, मेरे पीछे अमृतराय, फिर डा० अलीम उस भीड़ में धँसे। भीड़ नाचने वालों की, देखने वालों की, देखते-देखते नाचने लगने वालों की, असंख्य थी। राह बनाना कुछ आसान न था। पर हमें शान्ति के प्रतिनिधि, मेहमान और भारतीय समझ लोग अपने-आप राह बना देते थे।

हम उस अपार भीड़ में घुसे, एक के पीछे एक। थोड़ी-थोड़ी दूर पर गोलांबर-सा बन गया था, जिसमें तरुण-तरुणियाँ बीस-बीस की तादात में एक साथ एक-दूसरे के हाथ पकड़े यांको नाच रहे थे। हम जैसे ही एक में घुसे एक अत्यन्त सुन्दर प्रसन्नवदन लड़की ने मेरा हाथ पकड़ लिया, कुछ कहा। मैंने वांग की ओर जिज्ञासा से देखा। उसने बताया—"कहती है—इन से कह दो, संसार के सभी शान्ति-प्रेमियों का परिवार एक है।"

बदन में बिजली-सी दौड़ गई—कह दो इनसे, संसार के सभी शान्ति-प्रेमियों का परिवार एक है ! लड़की की लम्बी पलकों वाली आँखें प्रसन्नता से फैल गईं थीं, उसका भरा-पुलका शरीर आनन्द-विह्वल था।

मेरा भी रोयाँ-रोयाँ जैसे उसके शान्ति के अनुरोध से पुलक उठा। सहसा गगनभेदी नाद अन्तरिक्ष में गूंज उठा—'होपिंग वांसे !' शान्ति चिर-जीवी हो ! और अभागे कहते हैं कि शान्ति के जल्से झूठे बनाये हुए हैं। शायद वह लड़की भी बनायी हुई थी। जिसके हृदय है, जो युद्ध के संहारक फल को चख चुका है, जिसे इन्सान की विरासत को बचाने की हविस है, वह जानता है, यह गूंज बनावटी नहीं है, शान्ति की आवाज बनावटी हो नहीं सकती। और अब भी, जब उस आवाज को घंटों गुजर गये है, वह मेरे रग-रग से उठ मेरे कानों को भर रही है—'इनसे कह दो, संसार के सभी शान्ति-प्रेमियों का परिवार एक है !'

गान और नाच होते रहे, घंटों हम सभी उसमें शामिल थे, मै भी था। न गाने का स्वर पकड़ पाते थे, न नाचने का कदम, मगर शामिल पूरे-पूरे थे, तन-मन से। हमारा उचकना देखकर कोई-कोई लड़के-लड़कियाँ हमें बताने का भी यत्न करते पर जिनके पैर उस दिशा में कभी उठे ही न थे उनमें नृत्य की गति कहाँ से आ सकती थी !

अपने यहाँ हम सदा तमाशबीन ही रहे हैं। धोबियों, कहारों के नाच-गाने को, अहीरों, जाटों की तड़पती भावभंगियों को, उराँव-मुंडों की आदिम ताजी हवा में लहराती गेहूँ की क्यारियों-सी कतारों को हमने सदा केवल तमाशबीनों की तरह देखा है। हम उनमें कभी बस नहीं पाये, उनमें कभी बसने का प्रयत्न ही नहीं किया, सदा उन्हें हेय समझा, और अपनी नागरिक तथाकथित सभ्य ऊँचाइयों से उनका स्पर्श वर्ज्य करते रहे। राजनीति में भी हमारी तमाशबीनी उसी प्रकार थी। हमारे लिये कुछ कर दिया जाय पर हम स्वयं उस 'कुछ कर देने' के खतरे से अलग रहेंगे। 'फ़िलिस्टिनिज्म' का यह ज्वलन्त रूप है, और हमारे आचरण, हमारे जीवन की कितनी गहराइयों में यह घर चुकी है, कहना न होगा।

नारी का स्पर्श, उसका दर्शन, परदे के कारण, हमारे भीतर एक अजीब घिनौनी चेष्टा पैदा करती है, एक अजीब बनावटी घिनौना परहेज,

अनोखी भीति। और जो इस प्रकार की भीड़ नर-नारियों की, विशेषकर लहराती जिन्दगी के प्रवाह में, नाच-गान के बीच हो, तो क्या हो-गुज़रे, भगवान जाने ! पर पिछली रात, सेकसरिया जी, लाखों तरुणों, लाखो तरुणियो के एकस्थ समारोह में, जहाँ राह मिलनी कठिन थी, बदन से बदन छिलता था, उस भीड़ के बीच, हाथ में हाथ कसे, हँसी की छूटती फुहारों के बीच, थिरकते पैरो, गाते कंठो के बीच क्या किसी ने कहीं किसी प्रकार का स्खलन, किसी तरह की बेहूदगी, ओछापन देखा? सुना?

अपने शहर में अपनी बहन के साथ बाहर निकलते वह दिन नहीं, जब घिनौनी आँखें लोगों के जिस्म नहीं छेद देती हों, जब आवाजकसी नहीं सुननी पड़ती हो। फिर इस चीनी समारोह की बात सोचें और चीनियों के इस सामूहिक जीवन पर उन्हें बधाई दें। यह माओ का ससार है।

नाच के एक गिरोह से निकलते, दूसरे में शामिल होते घंटों बीत गये। साढ़े तीन बज चुके थे, जब हम होटल को लौटे। अमृतराय तो होटल से दम लेकर फिर नाच की ओर लौट पड़े पर मैं और डा० अलीम कमरे में घुसे। डाक्टर थके थे, उन्होंने पलंग का सहारा लिया; मैं भावबोझिल था, मैंने कलम पकड़ी। पर अब लिखकर भी सोचता हूँ, क्या सचमुच कुछ लिख सका? उसे लिखने के लिये जो देखा है, शारदा की वाणी, गणेश की कलम चाहिये। मुझे तो वही गुसाईं जी की वाणी याद आती है—गिरा अनयन, नयन बिनु बानी !

अच्छा, बन्द करता हूँ, प्रणाम। पन्ना जी को स्नेह कहे, और उनकी उस लड़की को प्यार, जिसका अच्छा-सा कुछ नाम है, पर याद नहीं।

श्री सीताराम सेकसरिया
कलकत्ता,

आपका ही,
भगवत शरण

पीकिंग,
२ अक्तूबर, १९५२

कविवर,

कई दिन पहले लिखना चाहता था पर पीकिंग का समारोह कुछ ऐसे बवंडर-सा है कि एक बार उससे छू जाने से फिर उसी में खो जाना पड़ा है। पर आज, जो कई दिनों से गुनता आया था, लिखना ही पड़ा। उचित तो यह था कि कुछ नरम-तरल लिखता, कुछ मर्म की बात, जिससे आपके स्निग्ध आर्द्र मन को ठेस न लगे। पर वह काम मेरा नहीं, आपका है—कल्पनाओं की दोला जिसका आधार है, मलय का स्पर्श जिसकी रज्जु है, मकरन्द की सुरभि जिसकी हिलोर है। मैं तो आज की बात लिखने जा रहा हूं। आज के इस पीकिंग की जिसके आंगन में दूर देशों के तपस्वी, साधक और जन-सेवक, कवि और चिंतक एक चित्त से विश्व में युद्ध का विरोध और शान्ति का आह्वान् करने आये हैं। जानता हूं, कवि, आपको भी शान्ति की यह अर्चना अभिमत है।

अपने बीच आज तुर्सूमजादे और नाजिम हिकमत को पा आपकी सहसा याद आई—'पल्लव' की, 'ग्राम्या' की। आपकी भारती का स्वर धीरे-धीरे मनोभावों के ऊपर उठा और मर्म को मथने लगा। तुर्सूमजादे ने कई दिन पहले रूसी डेलीगेशन के भोज में भारत के प्रति अपने स्नेह सिक्त उद्गार व्यक्त किये। नाटे क़द के प्रशस्त कन्धों पर रखे भारी सिर वाले इस पुरबिये कवि ने बार-बार अन्तर को अपनी आवाज से विकल कर दिया। जिस कोण से, जिस निष्ठा से आपके उस समान-धर्मा ने हमारे 'हिन्द' को चेता और देखा उसकी याद आज भी गात

को पुलकित कर देती है। कभी पढ़ा था—

गायन्ति देवाः किल गीतिकानि धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे।
स्वर्गापवर्गास्पद मार्गभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्

वह अपने देश की बात थी, पूर्वजों की गर्वोक्ति जिसे अंगीकार न कर सका था, जैसे उस अवाच्य को भी नहीं जो मनु की लेखनी से प्रसूत हुई थी—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः॥

पर वही बात जब तुर्कमजादे ने कही तो शरीर का रोंया-रोंया खिल गया। सच, वह बात अपने मुँह से कहने की नहीं, दूसरों के मुँह से कही कानमात्र से सुनने की है।

नाजिम हिकमत, जिसके सिर के बाल अधिकतर जेल की तनहाइयों के अंधेरे ने सफेद किये हैं, ऊँचाई में सवाई तुर्क है, पर गाथा के उद्गीरण में हाल का प्रतिस्पर्धी। ३७ राष्ट्रों के ४०० से ऊपर प्रतिनिधि विशाल सभा-भवन में उपस्थित हैं। सुर्ख रंगे हाल के अन्तरंग बहिरंग रक्त की ताजगी लिए हुए हैं। सामने के डायस पर ३७ राष्ट्रों के झंडे अपने-अपने प्रतीकों के साथ हल्के लहरा रहे हैं। उनके बीच संसार के महामना अनुपम पिकासो द्वारा चित्रित विशाल दूध-से सफेद डैनों वाला कबूतर पंख मार रहा है। कबूतर जो मानवता के मर्म का प्रतीक है, जीवन के अंतिम बीज का, राग से स्पन्दित हृदयों का, स्निग्ध पावन काम का। और उसे उस पिकासो ने चित्रित किया है—आधी सदी से जिसकी तूलिका का विश्व में साका चलता रहा है, जिसके वर्ण के सहसा फेंके छींटों से अनवरत चित्रण की नई-नई अभिराम शैलियाँ अभिव्यक्त होती गई हैं। उस पिकासो के पेरिस में कभी दर्शन किये थे—उस 'गेर्निका' के पिकासो के। आह कवि, गेर्निका

की याद कुछ ऐसी नहीं जिसके राज की बगैर चर्चा किये आगे बढ़ जाऊँ। जर्मन तोपों की मार से स्पेन के युद्ध में 'गोर्निका' का वह छोटा क़स्बा बरबाद हो चुका था, उसके पल्लव-पल्लव पर, हरी दूबों पर, कलियाई टहनियों पर, खिले फूलों पर रक्त के छींटे थे, हवा में पराग की बास चिरायंध की बू से दब गई थी। जर्मन पैरों की चाल से हवा तक सहमी हुई थी, परिन्दे आशियानों को छोड़ दूर के आसमान में खो गये थे। उसी गोर्निका के चीत्कार पिकासो ने अपनी कूर्च से लिखे। चित्र स्टूडियो में टँगा हुआ था। नात्सी-फाशिस्ती चोटें पेरिस की छाती तोड़ रहीं थीं, तभी जर्मन सेना की एक टुकड़ी ने स्टूडियो में प्रवेश किया। नायक ने चित्र की ओर उंगली उठाते हुए पिकासो से पूछा, "वह क्या तुम्हारी कृति है ?" (Did you do that ?) निर्वाक् चित्रकार ने उत्तर दिया, "नहीं, तुम्हारी"। (No, you did that !) और उस महामना से पेरिस में जब मैंने उस कहानी की सच्चाई पूछी तो चित्रकार चुप रह गया। मन कह उठा कि अगर यह घटना सच न भी रही हो तो सच हो जाय।

उसी पिकासो-चित्रित कबूतर को देख, जो जैसे एक वृक्ष की ३७ शाखों में पर मार रहा था, नाज़िम हिक़मत का कवि-हृदय गा उठा—

समान पेड़ की ३७ शाखाएँ,
हर शाख में सफेद कबूतर अपने पंख फड़फड़ा रहा है,
मां के दूध-से सफेद डैने जिसके,
ओ शान्ति के प्रतीक मेरे प्यारे कबूतर,
पीकिंग ने अपनी ऊँची से ऊँची बुर्जियां तुझे दे डाली हैं,
ऊँची से ऊँची पर तू अपना घोंसला बना !!

"माँ के दूध-से सफेद डैने !" मानवता की रक्षक 'संवर्धक' युद्ध-कलह विरोधी शान्ति निश्चय मां के दूध-सी प्यारी है। उसके प्रतीक कबूतर के डैने नाज़िम को इतने प्यारे लगे कि मां के दूध की याद आ

गई। हाल में खड़े सैकड़ों-सैकड़ों पृथ्वीपुत्रों को, दुनिया के दूर किनारों से आने वाले प्रतिनिधियों को माँ के दूध से पावन लगे थे। बार-बार नाज़िम की वे पंक्तियाँ मानस-पटल पर दौड़ जाती हैं—माँ के दूध-से पवित्र श्वेत कपोत के डैनों की फड़फड़ाहट जैसे इस दम भी मानस में भर जाती है जब, अभिराम कविवर, आपको लिख रहा हूँ।

और नेरुदा की वे पंक्तियाँ, जिसने सर्वहाराओं को ज़मीन पर टिके रहने के लिए घुटने दिए थे और पाल राबसन का वह सन्देश जो दलितों-पीड़ितों तक ज़मीन को अधिकारी-सा भोगने की आवाज़ लाया था। ३७ राष्ट्रों के ४०० से ऊपर प्रतिनिधि उस विशाल हाल में आज गांधी के जन्म के दिन खड़े थे—उस शान्ति की रक्षा का व्रत लेने जिसके लिए वह अमर शहीद जिया और मरा था। प्रतिनिधि, जो पाँच-पाँच हज़ार मील का चक्कर लगाकर पीकिंग पहुँचे थे; जिनको राह में मौसम जितना बाधक हुआ था, उससे कहीं बढ़कर क्रूर मनुष्य की सत्ता बाधक हुई थी, राह में तलाशी के लिए जिन्हें बेपर्द कर दिया गया था, जिनके पासपोर्ट छीन लिए गये थे। क्यों? कविवर, क्यों? अमन का पैग़ाम ले जाने वाले मानव-प्रतिनिधियों के प्रति यह अनुशासन क्यों? शीतल मलय के कोमल स्पर्श के प्रति यह क्षोभ की भावना क्यों? फूलों की नर्म राशि पर यह अंगारे क्यों?

प्रशान्त महासागर के तटवर्ती राष्ट्र, ऐशिया, पोलिनेशिया, कैनाडा, संयुक्तराष्ट्र अमेरिका, लैटिन अमेरिका, न्यूज़ीलैंड, आस्ट्रेलिया, अफ्रीका और यूरोप की मानव-जाति के अर्धांश से अधिक के प्रतिनिधि उस हाल में खड़े हुए और उन्होंने विश्व से युद्ध को बहिर्गत कर देने का महाव्रत लिया।

समारोह असाधारण था। पहली बार मानवी-कल्याण चेता प्रतिनिधि एकत्र हुए थे—कवि, लेखक, चिन्तक, वैद्य, राजनीतिज्ञ, चितेरे, वकील, शिक्षक पादरी, शासक, नेता जिनकी आँखें कारा की दीवारों को देखते-देखते पथरा गईं थीं, जिन्होंने जब प्रकाश की किरण कारा से बाहर

निकलकर देखी तो आँखें अंधी हो गई थीं। सैंतीस राष्ट्रों के प्रतिनिधियों के नेता दो-दो की संख्या में अध्यक्ष-मण्डल में शरीक हुए, सामने के मंचों पर जा बैठे। फूलों के पीछे बैठे उनके अभिराम कलेवर देवदूतों के-से लगते थे और जब उन्हें बालक-बालिकाओं ने फूलों के स्तबक प्रदान किये, उन्हीं में जा बैठे. तो ये बालक-बालिकाएँ फूलों की ही तरह उनके बीच खिल उठीं। भारत की ओर से डा० सैफुद्दीन किचलू, गुजरात के श्री रविशंकर जी महाराज और डा० ज्ञानचन्द बैठे। चीन के राष्ट्रीय नेता दिवंगत डा० सुनयात सेन की पत्नी ने मेयर के स्वागत के पहले सुन्दर भाषण दिया; शान्ति के पहलुओं पर प्रकाश डाला। मानव-जननी राष्ट्र सेविका नारी की आवाज बार-बार प्रतिनिधियों के अन्तर में प्रतिध्वनित होने लगी। मुनासिब था कि फूलों के पीछे भुण्डों के बीच पर फड़फड़ाते सफ़ेद कबूतर के सामने महामना नारी अपनी आवाज़ उठाये और उसकी छाती का दूध सहसा बह चले।

मनोभावों का वेग कितना प्रखर है, कवि, शारदा के साधनों की परिधि कितनी सीमित ! व्यंजना से अव्यक्त की व्यापकता कितनी अनन्त है ! न कर सकूँगा, निश्चय न कर सकूँगा उसकी अभिव्यक्ति, जिसके रस से देह का कण-कण आप्लावित हो रहा था; एक-एक सांस जिससे प्राण पा रही थी।

तीसरे पहर शान्ति-सम्मेलन की कार्यवाही शुरू हुई। कार्य का संचालन भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के नेता ने किया। खुला अधिवेशन था आज का। चीनी कला कुछ दिशाओं में अपना सानी नहीं रखती। हाल परम्परागत और वर्तमान की सम्मिलित कला की छटा से हम पर सम्मोहन डाल रहा था। लाल पृष्ठ-भूमि, लाल ज़मीन, लाल छत, लाल खम्भों पर लकड़ी की विशाल डाटों और शहतीरों का रंग, चटख नीले और लाल रंगों से दमक रहा था। सब्ज़ रंग लाल-नीली प्रखरता को नर्म कर रहा था। दीवारों पर चारों ओर तुनहुआंग की गुफाओं के भित्ति-चित्र सजीव नाच रहे थे, शान्ति के सन्देश, शान्ति के प्रतिनिधियों के

प्रति वहन कर रहे थे। तुनहुआंग के भित्तिचित्रों का आलखेन स्वयं अपनी ऐतिहासिक सम्पदा लिए हुए था, जिनका सन्दर्भ अतीव प्रासंगिक था। तुनहुआंग की गुफाएँ, अजन्ता के दरीगृहों की प्रतिबिम्ब हैं। अजन्ता के भित्तिचित्र कभी बौद्ध शान्ति-साधकों की तूलिका से तुनहुआंग की गुफाओं में सजीव हुए थे। तभी, जब इसी चीन के कान्सूप्रान्त के हूण रोमन साम्राज्य को तोड़ भारत के गुप्त साम्राज्य की चूलों पर चोटें कर रहे थे; जब विलासप्रिय शक्रादित्य कुमारगुप्त का साधनशील तनय स्कंद उन क्रूरकर्मा आक्रान्ताओं से टकरा रहा था—

हूणैर्यस्य समागतस्य समरे दोर्भ्यां धरा कम्पिता।

भीमावर्तकरस्य.........

जिसने उस संकट के काल सामान्य सैनिक की भाँति रणभूमि में रातें बिताई थीं—

क्षितितलशयनीये येन नीता त्रियामा।

कितना महान् अन्तर रहा होगा उन शान्ति-साधकों का, जिन्होंने अपने गौरवशील साम्राज्य की रीढ़ तोड़ते हूणों के अपने घर में ही, चीन के कान्सू में ही, कान्सू के तुनहुआंग में ही, बुद्ध का शान्ति-सन्देश पत्थर के आधार पर अपनी कूर्चो-तूलिकाओं से लिखा। और शान्ति के संवाहकों का चीन तक पहुँचना भी कुछ आसान न रहा था—कश्मीरी कराकोरम की खड़ी चढ़ाइयाँ, दुनिया की छत पामीरों की बर्फ़ीली चोटियाँ, जलविहीन गोबी का सूखा मरु-प्रसार और प्यास लगने पर अपनी ही सवारी के टट्टू की नस काट उसके रक्त से होंठों को भिगो प्यास बुझा लेना। इस परम्परा में हज़ारों मील से दूर आये शान्ति के प्रतिनिधि मंचुओं के उस हाल में खड़े हुए थे, जहाँ चीनी, रूसी, अंग्रेज़ी और स्पेनी में जनता की लिखी आवाज़ हवा के प्रत्येक झकोरे के साथ उठ रही थी—"शान्ति चिरजीवी हो!"

सैफुद्दीन किचलू ने कहा—"शान्ति के भारतीय प्रेमियों की ओर से मैं चीन के जनराष्ट्र के प्रतिनिधियों को सलाम करता हूँ और उनके ज़रिये

प्रबल चीनी जनता को, जो अपने महान् नेता माओत्से-तुंग के नेतृत्व में एशिया में शान्ति की शक्तितम आधारशिला है।" कुछ ही बाद पीर मंकी शरीफ़ की आवाज बलन्द हुई—"हमने कस्द कर लिया है कि हम अमन की रक्षा करेंगे और यदि जरूरत हुई तो हम जबर्दस्ती उसकी हुकूमत कायम करने से भी हाथ न खींचेंगे। अमन महज चाहने से ही नहीं क़ायम की जा सकती और हमें वे तरीके एक साथ मिलकर तैयार करने होंगे जिनसे इत्तिफाक की दुनिया आबाद की जा सके।" यह उस मंकी शरीफ के पीर की आवाज़ थी, पाकिस्तान के उस खूँख़ार सिपह की जिसके इशारों से कभी कश्मीर पर खूनी हमले हुए थे और बारामूला के गाँव खून से रंग गये थे। कबिलाइयों के महान् नेता इस पीर की आवाज़ बेशक अमन की फ़तह थी और इस तरह अमन के जादू को आज हमने जंग के सिर पर चढ़कर बोलते सुना।

साँझ हो गई तब हम उठे और होटल में दाखिल हुए। अलसाई साँझ तारों के हजार प्रकाश-करों में उलझी हुई थी, जब हम मंचुओं के उस हाल से बाहर निकले थे। किसने सोचा था कि क्रूरकर्मा, विलास-प्रिय मंचुओं के इस पानभूमि में, उनके इस घिनौने क्रीड़ास्थल पर कभी संसार के प्रतिनिधि उनके सावधि प्रतिनिधियों का मुकाबला करेंगे, शान्ति के उपकरण हाथ में लेंगे, युद्ध-विरोधी नारों से उस हाल को गुंजा देंगे।

कवि, रात भींग चली है, बाहर हल्की सर्दी है, क्योंकि सुबह बादल आये थे, फिर भी खिड़की खोल रखी है। हवा का झोंका हल्के-हल्के पत्र को फड़फड़ा रहा है। डा० अलीम आपाद चादर से ढके पड़े सो रहे हैं। एकाध डाढ़ी के बाल जब तब हिल उठते हैं पर चेहरे पर दिन की थकान का संतोष है और सुखद नींद की आसूदगी जो बार-बार मुझे भी मेरे बिस्तर की ओर बुला रही है। आशा

करता हूँ स्वस्थ होंगे, दूर पीकिंग से आपके स्वस्थ स्वास्थ्य के लिए कामना करता हूँ, स्नेह भेजता हूँ।

श्री सुमित्रानन्दन पंत,
उत्तरायण,
टैगोर टाउन,
इलाहाबाद।

आपका ही,
भगवतशरण.

पीकिंग,
६ अक्तूबर, १९५२

प्रिय एल. एन.,

कई बार ख़त लिखना चाहा पर इससे पहिले लिख न सका। आज लिख रहा हूं, जब जिस्म का रोंआँ-रोंआँ खुशी से फड़क रहा है। आज का दिन असाधारण था। शान्ति सम्मेलन में आज जो इन्सानी मुहब्बत के नज़ारे देखे वे सदा देखने को नहीं मिलते। देखनेवालों की आँखें भरी थीं, सुनने वाले सुनकर अघा गये, कहने वालों की आवाज़ में खुशी की झंकार थी।

आज शान्ति सम्मेलन मे हिन्दुस्तान और पाकिस्तान ने काश्मीर के मसले पर सम्मिलित घोषणा की। जिन हस्तियो ने इधर के सालों में भारत और पाकिस्तान के बीच बैर के बीज बोये हैं, उनको विश्वास न होगा कि मानवता का तकाज़ा राजनीति के स्वार्थों से कहीं अधिक महत्व का होता है। जिस एख़लाक और इत्तिफ़ाक़ का हिन्दुस्तानी और पाकिस्तानी डेलीगेशन के प्रतिनिधियो ने एक-दूसरे के दृष्टिकोणों को समझने में परिचय दिया, उसका अन्दाज़ बग़ैर उस दृश्य को देखे नहीं लगाया जा सकता। कई दिनों पहिले से भारत और पाकिस्तान के प्रतिनिधि अलग-अलग और एक साथ अपने विचार काश्मीर की समस्या पर प्रकट करते रहे थे। आख़िर में दोनों की ओर से घोषणा हुई। उसका संक्षेप में मन्तव्य यह था कि काश्मीर का मसला दोनों देश शान्तिपूर्ण तरीकों से तय कर सकते हैं और करेंगे; कि दोनों देशों की रार एशिया की शान्ति के लिये ख़तरा बन सकती है और साम्राज्यवादी शक्तियों को हमारी

नीति में हस्तक्षेप करने का मौका देती है और कि हम स्वीकार करते हैं कि जम्मू और काश्मीर की समूची जनता ही अपने भाग्य और भविष्य का निपटारा कर सकती है और उसे अपना वह हक़ प्राप्त करने का मौका मिलना चाहिए, और कि हम हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की जनता से अपील करते हैं कि वह तुरन्त ऐसे कदम उठाए जिससे जम्मू और काश्मीर की समूची जनता समता और ईमानदारी के आधार पर बगैर किसी रुकावट, डर और पक्षपात के अपने भाग्य का स्वतन्त्रतापूर्वक निर्णय कर ले।

यह घोषणा तो असाधारण महत्त्व की थी ही इसके सम्बन्ध के दृश्य, जैसा पहिले लिख चुका हूँ, बड़े रोचक थे। विभाजन के बाद पहली बार दोनों देशों के प्रतिनिधि प्यार से मिल रहे थे जैसे भाई-भाई हों। इन पिछले दिनों में हिन्दुस्तान और पाकिस्तान ने क्या न देखा था! जिस बनैलेपन से दोनों मुल्कों में खून-खच्चर हुआ था उसका सानी दुनिया के इतिहास में नहीं। बंगाल और पंजाब, बिहार और उत्तरप्रदेश की जमीन आज भी खून से लाल है। उनकी बची हुई जनता आज भी दर्दनाक कारनामों की याद से भरी है, आज भी सदा के लिए बिछुड़ गए अकाल मारे आत्मीयों की याद उन्हें सहसा सता उठती है। चीन की जमीन पर जो सहसा बिछुड़े हुए भाईयों के दिलों में मुहब्बत की बाढ़ आई तो इन्सानियत की तरलता, एक बार अनायास बह चली। सारा सम्मेलन, रेडियो पर कान लगाए बैठी जनता, उस प्रेम की बाढ़ से आप्लावित हो उठी। दृश्य होते हैं, एल. एन, जिसे लेखनी लिख सकती है, जबान कह सकती है, पर दृश्य ऐसे भी होते हैं जिन्हें लिखते गणेश की लेखनी भी असमर्थ हो जाती है, शारदा की जिह्वा भी बेकार। नहीं लिख पाता हूँ उस घटना का ब्योरा, जो शान्ति सम्मेलन के उस रंगमंच पर घटी। कान खोले, आँखें लगाये दूर की साम्राज्यवादी शक्तियों की जमीन उनके पाँव तले सरक पड़ी, उनकी पृथ्वी में जलजला आगया। मानवता की वह पहली विजय थी। मनुष्य का क्रोध बुरा होता है पर

मानवता का स्नेह उसकी आग पर पानी डाल देता है। प्यार की रहमत बदले के सन्तोष से कहीं बड़ी है।

जब भारतीय और पाकिस्तानी प्रतिनिधि मण्डलों की नारियाँ सम्मेलन की बैठक के बीच से डायस की ओर बढ़ीं तो लगा इन्सानियत का एखलाक देवियों का रूप धरे बह चला है। प्यार और सौजन्य की मूरतें, मिली जुली, जमीन पर जैसे सावन छा गया। देवताओं की स्वर्ग-सभा चुपचाप देखती रही, वरुण के चर अपलक निहारते रहे वह दृश्य जब भारतीय नारी ने अपनी पाकिस्तानी बहन को भेंटा। कितना सौरभ हवा में उठा; कितना प्यार आँखों से कढ़ा, यह कहना कठिन है। दोनों देशों की नारियों ने उन दिनों कितना सहा था। पति और पिता, भाई और बेटे उन्होंने अपनी आँखों से जूझते देखे थे, क़त्ल होते, और अपनी असमत हजार कोशिशों के बावजूद वे न बचा सकी थीं। आज वह सब कुछ याद करके भी भूल रही थीं और मानवता के प्रेम की बेलें वे फिर अपनी छाती के दूध से सींच चली थीं। क्या वे बेलें जमाने की बेरुखी से, मेरे प्यारे दोस्त, कभी सूख सकेंगी!

वह दिन याद है जब उसी मंच पर कोरिया और संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रतिनिधि मिले थे, दोनों ने एक-दूसरे को गले लगाया था। जब भरे दिलों से, अपराध के दर्द से काँपते अमरीकन चुप थे, कहना चाहते थे कि हम नहीं हैं, जो कोरिया के जमीन पर आज गोले बरसा रहे हैं, उसके अस्पताल और स्कूल बरबाद कर रहे हैं, उसकी माँओं की छाती से तड़पते बच्चों को खींच कंस की बर्बरता से पटक रहे हैं; या कि ये कहते थे कि हम हैं तुम्हारे अपराधी, उस अंकिलसैम की औलाद, जिसने अपने खूनी पंजों से कोरिया के हृदय पर आघात किया है। और चुप-ही-चुप भरी आँखों से कोरिया के प्रतिनिधियों ने समझ लिया था कि सच-मुच वे नहीं हैं अमेरिका के जंगबाज जिनके लिए इन्सान की मिट्टी और बरसात की मिट्टी में कोई फरक़ नहीं, और कि जो उस अंकिलसैम की औलाद नहीं जिसके खूनी पंजों ने कोरिया की इन्सानियत के मर्म पर

चोट की है। पर आज का नज़ारा उससे कहीं मार्मिक था, कहीं पुरअसर बिलखती मासूम मानवती पर जैसे माँ के प्यार का हाथ पड़ गया था और सारी जनता भरी आँखों से, भींगी पलकों से उस दृश्य को निहार रही थी। उसके गाल गीले थे उसका कणकरण आर्द्र हो चला था। हाल के सारे प्रतिनिधि खड़े थे। २७ मिनट तक लगातार तालियाँ बजती रहीं और बाद कितनी देर तक गीले गालों ने अपनी कहनी दूसरों को सुनाई यह भला मैं क्या कह सकता हूँ।

भारतीय प्रतिनिधि मण्डल के नेता डा० सैफ़ुद्दीन किचलू जब पाकिस्तानी प्रतिनिधि मण्डल के पेशवा मंकी शरीफ़ के, पीर से गले मिले तब राम और भरत का मिलन जैसे मूर्तिमान हो उठा। काश्मीर के मसले पर ऐलान का वह दृश्य कितना ओजमय, कितना मर्मस्पर्शी, कितना शालीन था!

उस ऐलान पर भारत और पाकिस्तान दोनों के प्रतिनिधियो ने दस्तख़त किये, दोनों तरफ़ के चार-चार प्रतिनिधियों ने। पाकिस्तान की ओर से तीन ने उर्दू में और एक ने बंगला में, और हिन्दुस्तान की ओर से एक ने उर्दू में तीनने हिन्दी में। हिन्दी में दस्तख़त करने की बात मैं इसलिए खास तौर से लिख रहा हूँ कि उस सम्बन्ध में अपने देश में गलतफ़हमी हो जाती, कुछ अजीब नहीं। मजे की बात तो यह है कि ये चारों अहिन्दी भाषा-भाषी थे। इनमें से किचलू साहब को उर्दू में दस्तख़त करनी पड़ी, क्योंकि अगर वह ऐसा न करते तो अंग्रेजी में करनी पड़ती, जो निश्चय बेजा होता। बाकी डा० ज्ञानचन्द, श्री रविशंकर जी महाराज, और श्री रमेशचन्द्र ने हिन्दी में दस्तखत किए। रमेशचन्द्र की दस्तखत तो हिन्दी में कुछ ऐसी है कि लगता है जैसे सामने पहली बार किसी से नाम लिखवाकर उन्होंने नकल कर ली हो। हिन्दी के प्रति लोगों का यह बढ़ता हुआ आदर हमारे सन्तोष का कारण होगा।

बन्द करता हूँ अब। अभी बाहर जाना है। लोग नीचे के लांज में भर रहे हैं। मिसेज गुप्ता से मेरा स्नेह कहें, बच्चों को प्यार।

आपका ही

भगवतशरण,

श्री लक्ष्मी नारायण गुप्त, आई. ए. एस.,
सेक्रेटरी, शिक्षा विभाग,
हैदराबाद।

पीकिंग,

११ अक्तूबर, १९५२

नरेश,

आज सहसा तुम्हारी याद आई। सुबह का सुहावना समय था, अलल सुबह का। तारे जो रात भर चमकते रहे थे, अब सो चले थे। चाँद अब उतना सफेद न था, हल्का पीलापन उसपर छागया था। उसकी ज्योति मन्द पड़ गई थी पर उषा की लालाई के बावजूद उसकी इतनी चाँदनी जगत पर अपनी सुकुमार सुषमा डाले हुए थी। महीन रुई की चादर-सा एक फुल्का बादल उसे ढके हुए था, पर चाँद झिलमिल-झिलमिल जैसे उसके पीछे से झाँक रहा था।

चाँद क्षितिज के उतार पर था, देखते-ही-देखते हल्के से उतर गया उसकी आड़ में। एक धुँधला-नीला आसमान एक ओर उषा की लालाई लिए, दूसरी ओर हल्के ढुलकते कामरूप मेघों का संसार उठाये आँखों में रम चला। उषा के लाल तुरगों के श्वेत रथ को देख अनेक टियोनस अपनी क्षणभंगुर मानव-काया पर बिलख उठे हैं, अनेक ऋषियों ने उसके नित्य शुभ्रवसना छलियारूप को उस कमाई से उपमा दी है जो वक्षी को तिल-तिल काटता है, मानव-जीवन की नित्य-प्रति घटती जाती आयु की भाँति।

और लगा जैसे उषा के रथ के तुरंग सहसा ठमक गये हों। तभी तुम्हारी लाइनों को फिर धीरे-धीरे गुनगुना उठा—

अश्व की वल्गा लो तुम थाम,
दिख रहा मानसरोवर कूल—

देर तक इन्हें गुनगुनाता रहा, फिर धीरे-धीरे सम्मेलन में नित्य मिलने वाले कवियों की काया मानस में उठी—सलामिया की, तुर्सूमजादे की, नाजिम हिकमत की। सलामिया स्पेनिश भाषा का मधुर कवि है, कोलम्बिया का अनुपम आवारा, जो आवारा आज है, पर कभी सरमाया-दारों में था, विदेशों में कोलम्बिया का राजदूत, स्वदेश में शिक्षा-मन्त्री। आज वह आवारा है अपने ही राष्ट्र की सत्ता का शिकार, जिसने आर्जिने-न्टिना में पनाह ली है। मझोले से कुछ ऊंचा, गठा शरीर, घुँघराले बाल, सुबह को दूज की चाँदनी-सा लाल-पीला रंग, जैसे पीला कमल कुम्हला गया हो। शान्ति-सम्मेलन का सुन्दरतम नर, मेरा प्रिय सहचर, अभी उस दिन उसने अपनी कविताओं का संग्रह मुझे भेंट किया था जिसे मेरे अज्ञान का आवरण आज भी ढके हुए है।

तुर्सूमजादे से कई बार मिल चुका हूँ। सम्मेलन में, दावतों में, गोष्ठियों में, लानों की हरी घास पर। सीधा-सादा निष्कपट कलेवर, प्रसन्न आभा—आन्तरिक औदार्य की सूचक, चेहरे पर लहराती-सी। आँखें, करुण-कोमल, ऊपर पड़ते ही जैसे बरबस अपनी ओर खींचे लेती है, मजबूर कर देती हैं। पर आज जिस घटना का जिक्र करूंगा वह न तो सलामिया से सम्बन्ध रखती है, न तुर्सूमजादे से; बल्कि तुर्की के महान् गायक नाजिम हिकमत से।

नाजिम हिकमत का जादू आज तुर्क तर्बों पर हावी है। प्राणदण्ड के भय के बावजूद उसके गीतों के तराने, तुर्की के जंगलों, घाटियों में लहरा उठते हैं। अंकारा और कुसतुनतुनिया की जेलों की दीवारें एक ज़माने तक उसकी आवाज़ सुन-सुन काँपती रही थीं और आज जब वह अपने वतन से इतनी दूर चला आया है, तब भी जैसे वे अपनी गहरी तन्हाइयों में उसकी आवाज को साँय-साँय दुहरा उठती हैं।

नाज़िम हिकमत से कई बार मिलने का मौका मिला पर मुलाकातें एख़लाक की परिधि के बाहर न जा सकी थीं। आज पहली बार हम दोनों जमकर बैठे। सम्मेलन के अधिवेशन अक्सर सुबह के लंच के समय

तक, तीसरे पहर से देर शाम तक हुआ करते हैं और दोनो बैठकों में बीच-बीच में कोई १५ मिनट की रेसेस हुआ करती है। तब हम सभा-भवन के पीछे के हाल में, दूर पीछे के आकर्षक लान के दोनों ओर के हालों में चाय पीते हैं, फल और मिठाइयाँ खाते है या लान की हरि-याली पर प्रतिनिधियो से मिलते, चहलक़दमी करते हैं। कल सुबह की बैठक की रेसेस में जब चिली के एक भावुक कवि और पाब्लो नेरुदा के मित्र के साथ लान पार कर बाँये ओर के हाल में घुला तो आँखें मिलते ही नाजिम हिकमत को मुस्कराते-बुलाते पाया। वैसे भी देखते ही उस ओर अनायास बढ़ गया होता पर आमन्त्रण खासा सम्मोहक था। हँसती आँखें कुछ दब गई थीं, होंठों के खिच जाने से दमकते दाँत कुछ खुल गये थे।

टूटी-फूटी अंग्रेजी में कवि ने स्वागत किया। हाल लोगों से खचा-खच भर रहा था। उधर अपने श्रोताओं की भीड़ लिये चीन के शिक्षा-मंत्री क्वोमोरो खड़े थे, जिनसे कल मेरी खासी लम्बी बात हुई थी। उधर चीन के प्रख्यात साहित्यकार एमीशियाओ खड़े थे और उधर रूस के अन्तर्राष्ट्रीय साहित्य के सम्पादक ऐनिसिमाव चाय की चुस्की भर रहे थे। बीच में दीवार से लगे सोफे के पास हम खड़े हुए, फिर बैठ गये। बैठते ही नाजिम हिकमत फ्रेंच में कुछ बोले और हँस पड़े और सहसा मेरे सचेत होने के पहिले ही धारा प्रवाह फ्रेंच बोलने लगे। थोड़ी देर तक मैंने सुना, कुछ बोलने का प्रयास किया, कवि ने रोक दिया। कहा — सुनो। मैं सुनता गया। वह कहता गया, उसी धाराप्रवाह फ्रेंच में। जब-जब कुछ कहने के लिये बीच में उन्मुख होऊँ; तब-तब कवि मेरे कंधे पर हाथ रख मुझे रोक दे और अनेक बार तो उसने कहा— ठहरो, मुझे कह लेने दो, मुझे पहले खत्म कर लेने दो, फिर तुम अपनी कहना। मै सुनता गया। चिली के कवि की आँखें कभी मुझ पर कभी नाजिम हिकमत पर टूटती-टकराती रहीं और तुर्की कवि का वेग उसी अनवरत रूप में बना रहा। १५ मिनट बीते, फिर ३०, फिर ४५

मिनट। अधिवेशन कब का फिर से आरम्भ हो गया था पर कवि निरंतर मधुवर्षा करता जा रहा था। जब ४५ मिनट बीत चुके तब कहीं कवि रुका और उसने कहा—"अब तुम बोलो।" "मैं क्या बोलूँ?" मैंने कहा, "बीच में कई बार जो कहने की कोशिश की थी बस वही मुझे कहना है कि मैं फ्रेंच नहीं जानता।" नाजिम जोर से हँस पड़ा, मैं भी, चिली का कवि भी, उत्सुकता से नाज़िम की बात सुनते कुछ अटके हुए सम्मेलन के प्रतिनिधि भी। चिली के कवि दुभाषिये का काम करने आये थे, पर उनको अर्थ करने का मौका न मिला। कवि ने हँसते हुए पूछा—"फिर पहले क्यों न कहा?" पर मैं कहता कैसे, जब साँस रोक के केवल सुनता पड़ा था।

शाम के अधिवेशन में एक मार्के का व्याख्यान हुआ। पनामा प्रतिनिधि मंडल के तरुण नेता कारलोस फ्रांसिस्को चंगमारिन ने असाधारण ओजस्वी भाषा में पनामा की जनता पर अमेरिका के अत्याचार का खाका खींचा। उसके वक्तव्य के बीच की कुछ पंक्तियाँ आज भी याद हैं। कहने लगा—"दुनिया पनामा के बीच होकर बहने वाली एक विशिष्ट नहर की बात करती है। सोचती है कि यह नहर हमारे देश की समृद्धि की जननी है। पर उसे कौन बताये कि वर्त्तमान पनामा कैनाल कम्पनी आज पनामा की जनता की गुलामी और ज़ुल्म का भयानक ज़रिया बन गई है; कि वह विदेशी आर्थिक महत्त्व का कारण बनी है; कि वह हमारे ऊपर ज़ुल्म करने वाली राजनीतिक निरंकुश यन्त्र है; कि वह हमारे सामाजिक भ्रष्टाचार और सांस्कृतिक प्रतिगति की जननी है; कि हमारी नारियों में रुग्णता और बच्चों की आहारहीनता की; किसानों की भूमिहीनता की और मजदूरों की बेकारी की; जातीय पक्षपात की; पर्वत में शरण लेने वाले इंडियनों के प्रति अमानुषीय अत्याचारों की; और वही कम्पनी इस भयानक झूठे विश्वास और ग़लतफ़हमी की कारण भी है कि हम पनामावासियों का अपना कोई देश नहीं और कि हम अंग्रेजी मानो कि डिगर ज़बान बोलते हैं।" कारलोस बोलता गया

था--"अमरीकी स्टीम रोलर ने हमारी संस्कृति कुचल डाली; हमारे नगरों पर उसने डाकू फ़िल्मों और 'अमेरिका की आवाज़' की वर्षा की है और उन्हें गन्दे, फूहड़, कामुक साहित्य और भँडैतियों से आप्लावित कर दिया है। हमारी व्यवसायिक संस्थाएँ अंग्रेज़ी वातावरण लिये हुई हैं और हमारे होटलों में, काफी-घरों में वेटर अंग्रेज़ी बोलते हैं। पैदल और जलसेना का नहर के बीच से गुज़रना अत्यन्त शर्मनाक नज़ारा खड़ा कर देता है। नहर के दोनों सिरों के नगरों—पनामा और कोलोन—की सड़कें सैनिक और जहाज़ों से सहसा भर जाती हैं। सैनिक और जहाज़ी हमारे मर्म पर छापा मारते हैं। देश में कहावत चल पड़ी है—'पनामा के रहने वालो, सावधान हो जाओ, बेड़ा आ रहा है···!' पनामा की सादी ज़बान में जिसका मतलब है कि बाप अब अपनी बेटियों की फ़िक्र करें, ख़ाविन्द अपनी बीवियों की, सामान बेचने वाले अपने सामान की। सलूनों के मालिक सैनिकों को बता दें कि सौदा तैयार है और दुकान के दरवाज़े खुले हैं; पनामा राष्ट्रीय पुलिस के जवान अमरीकी सैनिकों से पिटने के लिये तैयार हो जायें, क्योंकि अब कैनाल ज़ोन की मिलिट्री पुलिस की गश्त सड़कों पर लगने ही वाली है और क्यूबा, कोस्ता रीका और चिली की अभागी औरतें होटलों, भट्टियों और भ्रष्टाचार के दूसरे गढ़ों में अपने को बेचने के लिये तैयार हो जायें!

बड़ी भयानक आवाज़ थी जो डायस से उठकर माइक के ज़रिये हाल के कोने-कोने तक बिखर रही थी, मंचुओं के सभा-भवन की उन लाल दीवारों को हिला रही थी। कानों में एयरोफ़ोन डाले प्रतिनिधि निस्तब्ध सुने जा रहे थे—उस अपमान को, जो अमरीकी सैनिक और जहाज़ी पनामा की निस्सहाय जनता पर, उसकी बेबस नारी पर कर रहे हैं। कारलोस की वह आवाज़ आज भी मेरे कानों में गूँज रही है, नरेश, अमेरिका की आवाज़ से कहीं ऊपर उठती, दिगन्त को भरती-सी। बेबस नारी की आवाज़, चाहे वह पनामा की हो चाहे जापान की,

चीर खिचती जाती, बे आबरू होती द्रौपदी की आवाज है, जिसके अभि-शाप ने कितनी ही बार महाभारत में आतताइयों को, अस्मत लूटने वालों को बरबाद कर दिया।

नरेश, मानवता की कराह की आवाज मुल्की लबास नहीं रखती। देश-विदेश की सीमाएँ उसे नहीं रोक पाती। जंगल-पहाड़, सात समुन्दर लाँघ हमारे दिलों को वह झकझोरती है और हमारी छाती सहवेदना में कराह उठती है, कुछ कर गुजरने को मजबूर कर देती है। जुल्म का साया उठेगा, मेरे दोस्त, जैसे जलियाँवाले बाग और पंजाब से 'रौलेट एक्ट' का साया उठा। हस्तियाँ जो आज इंसानियत का गला घोंट रही है जेर होकर रहेंगी और इन्सान अपनी विरासत का सही मालिक होगा, उस दिन, जो अब ज्यादा दूर नही।

तुम्हारा
भगवतशरण

श्री नरेश मेहता,
आल इंडिया रेडियो,
इलाहाबाद।

पीकिंग,
१४ अक्तूबर, १९५२

पद्मा,

प्रायः तीन हफ्ते हुए पीकिंग पहुँचकर तुम्हें लिखा था। आज पीकिंग छोड़ने से पहिले फिर लिख रहा हूँ। कल शंघाई जाना है। जाना आज ही था मगर मौसम खराब होने के कारण जहाज न आ सका और हमको पीकिंग में ही रह जाना पड़ा। हम एयरोड्रोम गये भी थे, आज सुबह करीब घंटे-भर वहाँ इन्तजार भी किया, पर जहाज नहीं आया। अगर आ भी जाता तो शायद जाता नहीं क्योंकि मौसम के लगातार खराब होते जाने से उड़ना खतरे से खाली न था। हम होटल लौटा दिए गये और हमारी अधिकतर चीजें कान्तोन रेलगाड़ी से भेज दी गईं। आज फुरसत है, पैलेस म्यूनियम जाना है, तुम्हें खत लिखकर जाऊँगा। शायद लम्बा, खासा लम्बा खत।

कल का दिन केवल २४ घण्टे का न था, लम्बा था, शायद ३६ घण्टे का। क्योंकि हमने १२ तारीख की रात को १३ तारीख में बदलते न देखा, या कि देखा क्योंकि १२ से १३ को बदलते मिनटों के हम साक्षी थे, अपने सम्मेलन-कार्य में व्यस्त। मतलब यह कि १२ की रात जो हमने सोकर नहीं बिताई तो १३ के दिन के शुरू होने का गुमान तक न हुआ। १२ की शाम को दिन की बैठक खतम हुई थी और आधी रात के करीब ११ बजे सम्मेलन का अन्तिम अधिवेशन शुरू हुआ, जो लगातार ४ बजे सुबह तक चलता रहा।

निशीथ की नीरवता में शान्ति की शपथ ली गई। आवाजें

भारी थीं, आवाजें जो माइक से निकल-निकल वातावरण में पसर रही थीं, कानों पर टकरा रही थीं। सारे प्रस्ताव एक-एक कर आते गये, निर्विरोध पास होते गये। कितनी तमन्ना थी उनमें, कितनी साधें थीं, कितना दर्द था, कितना ओज था, कितना विश्वास था, कितनी आशा थी!

कोरिया की कुचली मानवता, जापान का मरणोन्मुख पौरुष, दलित राष्ट्रों का संघर्ष, आर्थिक और सांस्कृतिक रिपोर्टें, शान्ति और युद्ध-विरोधी व्रत, संसार की जनता से अपील, आज सारे प्रस्ताव अविरोध स्वीकृत हुए। ऐसा नहीं कि विरोध करने का अवसर न दिया जाता था, विरोध होते नहीं थे, पर निश्चय विरोधों को सुनकर उन पर विचार किया जाता था, आवश्यक परिवर्तन कर, विरोधी को शान्ति के तत्वों को समझाकर क़ायल किया जाता था। उसके कायल हो जाने के बाद ही फिर प्रस्ताव प्रस्तुत होता था। इतना सद्भाव, इतना भाईचारा, लक्ष्य तक पहुँचने के लिये इतनी तत्परता और कहीं न देखी थी। रात सहसा गुजर गई। अध्यक्ष ने जैसे ही बैठक समाप्त होने की घोषणा की, सैकड़ों-सैकड़ों, बालक-बालिकाएँ, दोनों ओर से सभा-भवन में सहसा देवदूतों की तरह दिव्य चमकते उतर आये।

८ से १२ वर्ष तक के बच्चे, एक हाथ में गुलदस्ते लिये, दूसरे से प्रतिनिधियों पर फूल बरसाते। कुछ अध्यक्ष-परिवार में बिखर गये, शेष प्रतिनिधियों की कतारों में ग़ायब हो गये। प्रतिनिधियों ने उन्हें गोद में उठा लिया। ११ दिनों की अटूट व्यस्तता के बाद अधिवेशन समाप्त हुआ था। थकान के बाद, कार्य सम्पन्न कर लेने के पश्चात् घर की याद आती है; फूल-से उन कोमल बच्चों की जिनका जीवन जंगबाजों ने आज संकट में डाल रखा है। उनकी याद के जवाब चीन के वे बच्चे थे खिले-फूले बच्चे, जिनको अभी से अपने मुल्क की नई ज़िन्दगी, नई उम्मीदों का एहसास होने लगा है। उनका सभाभवन में आना नितान्त ड्रमेटिक था। क्षण भर में जैसे हमारी सारी थकावट मिट गई।

ठीक तभी वाद्य का स्वर भवन में गूँज उठा। सहसा नजरें जो पीछे घूमीं तो देखते हैं कि सभाभवन के पीछे का पर्दा खिंच गया है और सैकड़ों गायकों का आरकेस्ट्रा संगीत तरंगित कर रहा है। वाद्य रुका, फिर लोक गायक का स्वर लहराने लगा। क्षितीश बोस ने तभी बंगला के लोक-गीतों की भैरवी फूँकी। हवा में हल्की सिहरन थी जो बाहर आते ही बदन में लगी और भली लगी। पूरब का सूरज शक्ति और ज्ञान, उत्साह और आशा के रथ पर चढ़ा। दूर से ही अपनी किरणों की आभा से क्षितिज भेद कर हमारी दुनिया पर छिटका चला था।

दोपहर के बाद करीब डेढ़ बजे म्यूजियम पैलेस के सामने मैदान में एक बड़ा समारोह हुआ। चीन के नेता, शान्ति-समिति के नेता, संसार की शान्ति प्रेमी जनता के प्रतिनिधि वहाँ खड़े हुए। पीकिंग की जनता अपनी सारी अल्पमतीय जातियों के साथ नीचे के मैदान में दोनों ओर जा खड़ी हुई। एक के बाद एक, अनेक नेता बोले। उन्होंने शान्ति सम्मेलन का संदेश पीकिंग की शान्ति प्रिय जनता को सुनाया। जनता को सम्मेलन की कार्यवाही का विवरण सुनाना था। जनता इसी अर्थ से वहाँ आई थी। और जनता की विजय अद्भुत थी। बौद्ध और ईसाई, मुसलमान और चीनी, मंगोल, तुर्क और तातार, तिब्बती, देशी-विदेशी सभी लोग शामिल थे। दोनों ओर की शिष्ट भीड़ के बीच एक प्रकार की सफेदी अक्षरों की आकार-सी बन गई थी। पूछा, वह क्या कोई चीनी लिखावट है? उत्तर मिला—हाँ, 'होपिंगवान-से'—शान्ति अमर हो! और यह लिखावट मुसलमानों की उन सफ़ेद टोपियों से प्रस्तुत हुई थी जो उस जाति के लोग पहने सविनय खड़े थे।

इस प्रकार का शिष्ट समारोह, लगा, केवल चीनी ही कर सकते हैं।

दिन में ही शाम की दावत का निमंत्रण कमरे में आ पहुँचा था। साढ़े नौ बजे सुनियातसेन पार्क में, म्युनिसिपल भवन में पीकिंग के मेयर

की ओर से दावत थी। गये।

पर राह जिससे होकर दावत में शरीक हुए, वह कभी न भूलेगी। ५ से १० जिस्मों की गहराई लगातार मील-भर—१०,००० व्यक्ति, बच्चे और नौजवान चेहरे, जैसे अभी-अभी पीली जवानी से धुले हों, फूल-से चेहरे जैसे दुनिया में कहीं और देखने को नहीं मिलते और २०,००० हाथ जिनमें से हरएक प्यार से बढ़ा हुआ हमें छूने को हमारे हाथ दबाने की कोशिश करता। दावत के भवन तक पहुँचते-पहुँचते जैसे लगा, हाथ मिलाते-मिलाते कन्धों से बाहें उतर जायेंगी और "शान्ति चिरजीवी हो!" की आवाज दिशाओं को गुँजायें दे रही थी। दुनिया के इतने मुल्क देखे, घूमा, इतने उत्सव देखे, पर मानवता की इतनी भोली सजीवता, इतना उत्साह, दूसरों के प्रति इतना सौजन्य, आतिथ्य की इतनी लगन और कहीं न देखी। सभी देशों की अलग-अलग मेजें लगी थीं जो खाद्य पदार्थों से, पेयों से झुकी जा रही थीं। हमारी मेजें पाकिस्तान की मेजों के बाद ही थीं। दावत देर तक चलती रही। बीच-बीच में लोग शान्ति के नारे बुलन्द कर देते, राष्ट्रों की मित्रता की सौगन्ध खा उठते, प्रेम की लहर-सी दौड़ रही थी। उसके बाद का लोगों का मिलना, एक-दूसरे को गले लगाना, प्यालों को टकरा-टकरा कर पीना आम हो गया। सारे प्रतिनिधि अपने पैरों पर थे। मेज-मेज पर जाकर उल्लास के साथ वे अपने दूर के बन्धुओं से मिलते, जैसे, सदा से परिचित हों।

दूर मैदान में बसें खड़ी थीं। उन तक पहुँचने की राह फिर तरुण कतारों के बीच से होकर गई थी। और उससे पहिले पार्क का वह मैदान था, जो अब लोगों से खचाखच भर रहा था, जहाँ नर-नारी विभोर नाच रहे थे। यूरोपीय और अमेरिकन मत्त नाच रहे थे। चीनी हाथ में हाथ डाले गोलाकार नाचों में व्यस्त थे। उन्हीं में हम भी शामिल थे। रग-रग में स्फूर्ति भर गई थी। जाना कि इन्सान के विरासत में उल्लास कितनी मात्रा में है, कि उसके आनन्द का वृत्त कितना विपुल है, कि

उसके प्रेम की परिधि कितनी व्यापक है। किन्तु अभागा मनुष्य दूसरों के स्वार्थों के वशीभूत यह नहीं जान पाता, अपनी अनन्त दाय का संभोग नहीं कर पाता !

अभी हाल उस दिन न्यूयार्क में नये साल की पिछली रात का समारोह देखा था। कितना फूहड़ था वह। लोग गालियाँ दे रहे थे, गन्दे गाने गा रहे थे। मुंह में शराब भर उसी भीड़ के ऊपर कुल्ले कर रहे थे और जाने क्या-क्या कह रहे थे। सुबह के पर्चों में अमेरिका की उस रात्रि समारोह में कुचले अभागों की संख्या, पियक्कड़ मोटर-ड्राइवरों की चोट से मरे हुओं की, हजारों में छपी। उसके विरुद्ध यह भीड़ कितनी संयत थी। एक दूसरे के प्रति लोगों का कितना ख्याल था। उत्साह संयम की रेखायें कभी पार नहीं कर पाता था।

लहराती तरुण पायनियरों की कतारों के बीच से लोग नाचते, गाते, हँसते बसों तक पहुंचे. मैं भी उनमें था। बस हमें ले ओप्रा हाउस की ओर दौड़ पड़ी।

रंगमंच की शोभा निराली थी, जैसे चीनी रंगमंच की हुआ करती है। अनेक दृश्य एक के बाद एक आने लगे। अनोखे सँवारे दृश्य हम देखते रह गये। पीकिंग के ओप्रा का हमारे लिये अन्तिम प्रदर्शन था।

दिन की सारी थकान उन दृश्यों ने मिटा दी।

पर थकान भी कुछ थोड़ी न थी। सोचो जरा, कल रात से ही अब तक लगातार कितना अनवरत कार्यक्रम था—पिछली रात की बैठक सुबह तक, दिन में पैलेस म्यूजियम का समारोह, शाम की दावत, रात का ओप्रा। कपड़े जैसे-तैसे फेंक बिस्तर में जा घुसा और ५ घंटे की अलभ्य नींद सोया।

शान्ति सम्मेलन समाप्त हो चुका। अब घर आने की उतावली है। कल शंघाई जाना है, दो दिन बाद कान्तोन, फिर हाँगकाँग और कलकत्ता। तुम लोगों की बड़ी याद आ रही है। अब तक कार्य की

व्यस्तता का नशा-सा चढ़ा हुआ था, उसके उतरते ही घर की सुध आई। यद्यपि जानता हूं आराम वहाँ भी न मिलेगा, क्योंकि बहुत कुछ करना है। चीन के सम्बन्ध में लिखना भी बहुत है, चीन की नारी की शपथ, करना भी बहुत कुछ है।

तुम्हारा
भैय्या

कुमारी पद्मा उपाध्याय,
प्रिंसिपल,
ए. के. पी. इन्टर कालेज,
खुर्जा। (उत्तर प्रदेश)

पीकिंग,
१५ अक्तूबर, १९५२

प्रिय शकुन्,

पिलानी से ६००० मील दूर पिकिंग से,१०,००० फीट ऊँचे आसमान से लिख रहा हूँ। हवाई जहाज अनवरत पर मारता चला जा रहा है। कानों के पर्दे उसकी घरघराहट से फटे जा रहे हैं। अभी-अभी पीकिंग छोड़ा है और तुम्हारी याद आई, सो लिखने बैठ गया। चलना कल ही था, क्योंकि परसों ही शान्ति-सम्मेलन ख़त्म हो गया था और स्वदेश जाने वाले अनेक मित्र साथ चलने को राजी हो गये थे, पर कल सुबह बादल घिर आये थे आसमान काला होकर जैसे नीचे झुक पड़ा था और जहाज का उड़ना खतरे से खाली न था। शंघाई जाना आज के लिए स्थगित कर दिया गया। हमारा सामान कल सुबह ही कान्तोन रेलगाड़ी से भेज दिया गया इसलिए कि जहाज का भार कहीं ज्यादा न हो जाय। और शंघाई से कान्तोन जाना भी तो है क्योंकि कान्तोन से ही हांगकांग जाने की राह है।

अभी-अभी पीकिंग छोड़ा है, शंघाईकी राह में हूँ अतीत और वर्तमान के बीच। पीकिंग ऐतिहासिक अतीत का महान् प्रतीक है। सुंगों का, हानों का, मंचुओं का, मिंगों का, गरज कि उन सबका जिन्होंने चीन की क्वारी जमीन जोती है और पीकिंग की धरा को रक्त और प्यार से सींचा है। शंघाई देश के उन दुश्मनों का इधर सालों क्रीड़ास्थल रहा है जिन्होंने अमेरिका और यूरोप के व्यस्त जीवन से ऊब बारबार वहाँ शरण ली है और बार-बार उसकी जमीन को बेपर्दा किया है, उसकी गंगा

सरीखी पवित्र बहू-बेटियों की लाज लूटी है जहाँ के मर्दों को मजबूर हो अपना गौरव बेचना पड़ा है और जहाँ की इमारतों ने पश्चिम का बाना पहिना है। पाप का अजदहा जहाँ संसार के घिनौने से घिनौने कोनों से हटकर कुंडली मार बैठा, उसी शंघाई की ओर हमारा जहाज़ पख मारता उड़ा जा रहा है। उसकी गति बेअंदाज़ है, पर मेरे मन की गति से अधिक नहीं। उन्चासों हवाएँ स्तब्ध हैं, बादलों के समूह दूर नीचे बिचरते हुए दीख रहे हैं। कुछ सरसर उड़ रहे हैं, कुछ धवल गायों की तरह जैसे नीचे की हरियाली देख मचल पड़ते हैं। और उनको भेद जब कभी नज़र उस हरियाली तक पहुँच पाती है, जो जमीन पर बिछी हुई है, जो पहाड़ों की चोटियों तक मढ़ी हुई-सी चढ़ती चली गई है, तो अहसास होता है कि प्रकृति के जादूगर ने मोटे, गुदगुदे कालीन बिछा दिये हैं। और जहाँ-तहाँ तो हरे खेतों का कुछ ऐसा प्रसार है कि लाल-हरी रौनक खड़ी हो गई है, जैसे बीरबहूटियों के अनन्त मैदान रच गए हों।

और देखता चला जाता हूँ प्रकृति की अनुपम छवि जहाज़ के इस दाहिने झरोखे से। पहाड़ और जंगल, खेत और मैदान, नदी और झील नीचे बिखरे पड़े हैं। फैले मैदानों में हरी घास और ऊँचे पौधों के बीच पानी की धारा चाँदी-सी चमक रही है। लगता है, प्रकृति नहा-धोकर बाल बिखेरे चमकती माँग काढ़े पड़ी है। उसकी अभिराम साड़ी दूर तक फैली पहाड़ों और जंगलों पर अपने अंचल का साया डालती चली गई है। जगह-जगह हटे घूंघट के बीच से जैसे चीन के गाँव जब-तब झाँक लेते हैं और उनकी सादगी और ताजगी हमारी स्मृतियों के पश्चिमी विशाल नगरों के बासीपन पर उमड़ पड़ती है। और हम उड़ते चले जा रहे हैं।

मन नहीं करता कि नीचे से आँखें हटा लें, यद्यपि आँखें थक गई हैं। जहाज की होस्टेस अकृत्रिम मुस्कराहट से दमकते चेहरे को हल्के से आगे बढ़ाकर अनेक बार काफ़ी और चाय के लिये पूछ चुकी है अनेक

बार विनीत व्यवहार से उसे मना कर दिया है। यद्यपि चीनी चाय का जादू दिल्ली से ही दिलोदिमाग पर छाया हुआ है। चीनी चाय, शाकुन, देवताओं को भी दुर्लभ है। अद्भुत पेय है वह, जिसकी भीनी सुगन्ध उसके मादक द्रव्यों से कहीं ऊपर उठ जाती है।

चाय की सूखी पत्तियों में जूही के सूखे फूल गरम पानी में उबल कर अपनी सुरभि निरन्तर फेंकते रहते हैं। उनकी गमक चाय की हविस मिट जाने पर भी देर तक रोम-रोम पर छाई रहती है। पर नीचे की वनस्थली का नयनाभिराम दृश्य कुछ इतना आकर्षक था कि चीनी चाय की मनोरम गंध भी उसके सामने फीकी पड़ गई। मैंने उसे फेर दिया, उन रंग-बिरंगी टाफ़ियों को भी, उन सुखाई लीचियों को भी जो चीन के किसी मौसम में कम नहीं होतीं।

नीचे से आँखें फेर लेता हूँ। दूर तक फैला सफ़ेद रूई का-सा बादलों का मैदान परे हो जाता है, आँखों की नीलिमा में मृत्युलोक की हरियाली लय हो चुकी है, पर स्मृति में पीकिंग की नई दुनिया लहराने लगी है। उसकी ऊँची बुर्जियों के कंगूरे हमारे जहाज़ की आदमक़द ऊँचाई को भेद जैसे अपनी परिधि में खड़े हैं। पीकिंग के सम्राटों के महल, चीनी मन्दिरों के अभिराम कलश, उनकी ऊँची छतों के लटके उसारे, मानववर्जित रनिवासों की नीली खपड़ैलें, बार-बार आँखों की राह मन पर उतर आती हैं। पर यह उस अतीत का रूप है जिसके भीतर-बाहर, ऊपर-नीचे, वर्तमान का नया जीवन पेंग मारने लगा है। आज अगर एक शब्द में मुझसे पूछो कि पीकिंग के वर्तमान जीवन को प्रतीकतः आलोकित करने वाला चिह्न क्या है, तो बस एक ही शब्द में उत्तर दूँगा—पीकिंग की नारी। और नारी वह लिजलिजी, घिनौनी, चमकते रेशम की गाउन पहने नहीं, जिसके पैर लँगड़ी साम्राज्ञी ने कभी लोहे के जूतों से जकड़ दिये थे, बल्कि नारी ऐसी जो आज बवंडर पर चढ़ तूफान को राह बनाती है। भूल नहीं सकता उस जवाब को जो नानचिंग के रेलवे स्टेशन पर मजदूर लड़की ने दिया था—अगर फ़ारमोसा से च्यांग-

कोई शेक आया भी तो उसे अपने मुँह की खानी पड़ेगी। न उस लड़की की आवाज़ भूल पाता हूँ, जिसने राष्ट्रीय दिवस की रात को तिएनानमेन के सामने लाल मैदान के नाच-समारोह में अपने सुन्दर, फूले, भरे हाथों में मेरे हाथों को लेते हुए दुभाषिये लड़की से कहा था—कह दो इनसे कि शान्ति के प्रेमी सब एक परिवार के हैं। पीकिंग छोड़ चुका हूँ, उस आवाज़ को उस कमलसुन्दरी तरुणी के कंठ से निकले आज एक पखवारा हो गया है—१५ व्यस्त लम्बे दिन और रातें बीत गई हैं, पर वह आवाज़ आज भी मेरे कानों में भरी है और उन सबके कानों में जिन तक मेरी कमज़ोर आवाज़ उसे पहुँचा सकी है।

उसी नई नारी पर, शकुन, चीन का सारा हौसला, सारा भविष्य, सारी आशा टिकी है। नाटे क़द की वह नारी, पीली जैसे मानसरोवर के पीले कमल, गुलाब से खिले उसके गाल, चाँद-सा गोल उसका चेहरा, पतली लम्बी-लम्बी बरौनियों से ढकी उसकी सफ़ेद नीली आँखें जिनकी नीलाभ गहराइयों में चीनी राष्ट्र का सारा उल्लास जागता-सोता है और उसके प्रशस्त मस्तक पर तिरछी किश्तीनुमा नीली टोपी के नीचे गर्दन तक कटे काले बाल, पुष्ट पहाड़-सी फैली छाती, बन्द कालर के कोट से पूरी ढकी हुई, नीचे बगैर क्रीज़ की ऊँची पतलून और कैनवस के जूते। घिनौने कवियों के माडल ये नहीं हैं। उनके माडल हैं, जिनका राष्ट्र ज़मीन में लथपथ पड़ा है और जिन्हें से उठाकर गौरव की पाद-पीठी पर आरूढ़ करना है। जब उनको सोचता हूँ, पच्छिमी जगत की—अमेरिका-यूरोप की—नारी भी एक बार याद आ जाती है। पर कितना नगण्य, कितना हेय, कितना विलासप्रिय उसका कलेवर है। उसका सारा मंडन केवल इसलिये होता है कि नर के भावुक अन्तर उसकी पैनी नज़रों से छिद जायें। उसका सारा मेक-अप तितली के अभिराम रंगों की याद दिलाता है, सारा अंगगत वैभव उस आपत् की जो अपने देश की कुमारिकाओं पर भी अपनी अशोभनीय छाया डाल चुका है। जिस तेजी से उसका आक्रमण हमारे देश पर हुआ है उसे देखते महात्मा

गांधी की वह बात कितनी सच लगती है कि हमारी तरुणियों का प्रयास आधे दर्जन रोमियो की जूलियट बनने की ओर है। चीन की वर्तमान नारी के पक्ष में यह वक्तव्य नितान्त असत्य होगा।

परसों की शाम बड़े मजे में बीती। पीकिंग के मेयर ने शान्ति-सम्मेलन के प्रतिनिधियों और अन्य हजारों मेहमानों को दावत दी थी। मेजें खाद्य पदार्थों और पेयों से झुकी जा रही थीं। यद्यपि खाने में मुझ-सा अनाड़ी भोज की उस संपदा का राज क्या जान सकता था, पर मेरा इशारा, बेटी, भोज की उस खाद्य सामग्री या उसके पेयों की ओर कोई नहीं है। उस जीवन की ओर है जो यम के विकराल भैंसे के पैर अपनी ताजगी से लड़खड़ा दे। भोज तक पहुँचने की राह उस भीड़ के बीच से थी जिसके स्वागत शब्द हमें शान्ति की स्थापना के लिए पुकार रहे थे। जिसके गान की आवाज हमारे थके, निरन्तर प्रयत्नशील शान्ति प्रयासों को शक्ति प्रदान कर रहे थे। सोचो, तीन मील लम्बी चीनी लड़के-लड़कियों की उस गहरी कतार को जिसमें १०,००० लड़कियों का योग शामिल था। १०,००० लड़कियाँ जिनके खिले कपोलों की मर्यादा कमल और गुलाब को लजाती थी, हमारे निज-निज विचारों को अपनी पवित्रता के स्पर्श से पुनीत करती थी। 'कुमारसंभव' में कालिदास ने रूप की एक व्याख्या की है, उसके प्रभाव का निचोड़ सीमित्वद्ध कर दिया है--वह रूप क्या जो अपने दर्शन से देखने वाले में पवित्रता न जगाये ? रूप कैसा जिससे कल्याण चरितार्थ न हो ? कालिदास की वह व्याख्या रूप के पावन प्रभाव के रूप में आज चीनी नारी के अंगांग में जा बसी है। अपने देश की नारी कब पच्छिम के अहितकर स्पर्श से मुक्त होगी ? कब वह समझेगी कि सचेत, सलोने अंगों के प्रभाव से कहीं गहरा असर स्वस्थ, स्फूर्ति और ताजगी के जादू का होता है ?

दूर नीले आसमान का मस्तक समुन्दर के नीले आँचल को चूम रहा है। प्रशान्तसागर की हल्की ऊर्मियाँ धीरे-धीरे बिखर-पसर रही हैं। शंघाई के विशाल भवनों की चोटियाँ अब भी बहुत नीचे हैं, पर जहाज

ो जो उत्तर चला है, उनकी छाया में पहुँचते देर न लगेगी।

लिखना अभी और है, पर इस वक्त बन्द करता हूँ। उतरना होगा, फिर होटल, लंच, कुछ आराम और शघाई के नए जगत का नये मानो से निरीक्षण। और तभी रात में फिर होटल लौटकर भोजन के उपरान्त लिखूंगा।

घण्टों बाद, रात की तनहाई में लिख रहा हूँ। इतनी दौड़-धूप के बाद चाहिए था सो जाना, पर कभी कभी सूने को आदमी कृत्रिम स्वरों से भरता है। स्मृतियां जब उमड़ती हैं तब दूरी सिकुड़ जाती है और दूर का वतन पास आ जाता है। 'किगकाग' नाम के इस होटल के मेरे कमरे में इतनी दूरी के बावजूद जैसे हमारा सारा वतन और पिलानी सिमट कर आ गई है। होटल का नौकर कब का आवश्यकतायें पूछ चला गया है, साथ के राहगीर शायद अपने कमरों में, दिन के थके, खुर्राटे भर रहे हैं। शायद उनमें से कई मेरी ही तरह दूर की निकटता को निकट की दूरी बना रहे हैं। शायद उनकी पलकों पर भी नींद मंडराती है, पर भाव-बोझिल पलकें यादों में उलझी हैं।

थका मैं भी हूँ, यद्यपि पैरों से चलने का काम बहुत थोड़ा ही पड़ा है। पत्र समाप्त करके ही सोऊंगा।

जहाज के जमीन छूने के पहले ही शत्-शत् कठों से फूटी 'शान्ति चिरजीवी हो!' की आवाज, कान को बहरा कर देने वाली जहाज की आवाज के ऊपर उठने लग गई थी। नीचे जब खिड़की से देखा तो सैकड़ों छोटे झंडों को नन्हे हाथों में लहराते पाया। रंग-बिरंगे फूलों के गुच्छे, स्वागत के 'बुके' हिल रहे थे। सुन्दर स्वस्थ जीवन जमीन पर लहरा रहा था। उतरा और बालक-बालिकाओं की ओर बढ़ा। हांगकांग का दृश्य उपस्थित था। १४ से १८ तक की उम्र की लड़के-लड़कियां हमें देखने को उचक रहे थे। हाथों के खिले फूलों की तरह खिले चेहरे, पीले ताजे गालों पर हल्की स्वस्थ सुर्खी, कुछ गाल भीगे, कुछ आँखें भींगी, पलकें हमारी ओर उठी हुईं। दूर के हम, दूर के वे, जीवन

का यह पहला अवसर निश्चय आखिरी भी, पर यह क्या कुछ है, शकुन, जो हमें बेबस कर देता है, मिलते आनन्द का आँसू बिछुड़ते कराह उत्पन्न कर देता है? गांधी जी ने उसे कभी 'मिल्क आफ ह्यू मन टेन्डरनेस' कहा था सही, वही मिल्क आफ ह्यू मन टेन्डरनेस, जिसके लिए परिचय की आवश्यकता नहीं होती और मर्म की नर्मी, जो वज्र को छेद देने का पैनापन रखती है, दर्शन मात्र से विकल तरल हो बह चलती है। फूलों के गुच्छे एक हाथ में लिए, दूसरे से बालिका का हाथ पकड़े, कतार बनाये मोटरों तक पहुँचे। मोटरें किंगकांग होटल की ओर दौड़ चलीं।

किंगकांग, जिसे किंगचॉग भी कहते हैं, संसार का विख्यात होटल है। नाम इसका कभी का सुन चुका था। अनेक-अनेक कहानियाँ इसके सम्बन्ध की पढ़ी और सुनी थीं। आज मोटर से निकल जो उसके सामने खड़ा हुआ तो विश्वास न हो कि यह वही जगत्प्रसिद्ध किंगकांग है। नारीत्व के पतन का मूर्तिमान रूप, विलास के घिनौनेपन का प्रतीक यह किंगकांग आज आवारों की घिनौनी हविस से कितनी दूर है, उसकी आज की मर्यादा पहले की कुरूपता से कितनी भिन्न! कई मंज़िल ऊपर लिफ्ट के सहारे अपनी मंज़िल के लौंज में पहुचा। मेरा कमरा मुझे दिखा दिया गया। दोनों ओर के कमरों की कतार के सिरे पर मेरा कमरा था, चमकता हुआ साफ़, जिसमें एक ओर दीवार के भीतर कपड़े रखने के लिए आल्मारी आदि से युक्त एक सँकरी कोठरी और एक खासा बड़ा गुसलखाना। कमरे में कई खिड़कियाँ है जिनसे दूर के मकानों की बुर्जियाँ और छतें साफ़ दीखती है और वह शून्य आकाश भी जिसकी गहराइयों में इन तल्पों-बुर्जियों की अनन्त-अनन्त ऊँचाइयाँ विलीन हो सकती हैं।

मेज़ पर कुछ फल रखे हे, सूखे मेवे, लाल-हरे केले, कुछ टाफी और एक बड़ा-सा थरमस गरम पानी से भरा? पास ही कुछ सुनहली रिक़ाबियाँ जिन्हें चाय की प्यालियों-सा बरत सकते हैं।

किंगकांग पहुँचते ही हाथ-मुँह धोकर लंच के लिए जाना पड़ा। लंच

शंघाई के मेयर का था। उसमें अनेक उच्चपदस्थ सरकारी अफ़सर भी थे। कुछ शिक्षा विभाग के, कुछ युनिवर्सिटी के। लंच के बाद ही बाहर निकले, शहर के कुछ विशिष्ट स्थान देखे। कुछ कल-कारखाने, कुछ शहीदों की क़ब्रें, कुछ विशाल दुकानें।

शाम हो गई। होटल में डिनर और चीनी चाय। और उसके बाद चीनी ड्रामा का एक हल्का-अंशतः प्रदर्शन, कलाबाज़ों के अचरज भरे कारनामें, छड़ी की पिन-सी महीन नोक पर अनेक-अनेक प्लेटों के निरन्तर नाचने के दृश्य और ऐसे अनेक दृश्य जिनका वर्णन बग़ैर देखे इस दूरी से तुम्हारे लिए कोई अर्थ न रखेगा, केवल बचपने की सी इस मेरी उत्सुकता का उपहास करेगा।

और फिर यह ख़त जिसे अब बन्द करना है, क्योंकि कल का प्रोग्राम तड़के शुरू होगा और वह 'कल' चीन का है, जिसके आज और कल के बीच ग़ज़ब का फ़ासला है, क्योंकि मिनट-मिनट पर होते परिवर्तनों की अटूट शृंखला उस आज और कल के बीच दौड़ती है। सो आज अब बन्द करता हूँ।

बहुत-बहुत प्यार। जल्दी ही लौटूंगा, शायद अगले सप्ताह में, यद्यपि पिलानी सीधा न आ सकूंगा।

कुमारी शकुन्तला तिवारी,
द्वारा, आचार्य अनन्तदेव त्रिपाठी,
पिलानी, (राजस्थान)

तुम्हारा
पापा

शंघाई,

१० अक्तूबर, १९५२

प्रियवर,

कल शंघाई पहुँचा। पीकिंग का शान्ति सम्मेलन खत्म हो गया। युद्ध-धिताड़ित संसार को शान्ति का सन्देश सुनाने उसके प्रतिनिधि कल ही चल पड़े थे। कहना न होगा कि कुछ लोगों को छोड़ संसार की समूची जनता युद्ध विरोधी है। उसने अपने स्कूलों और चर्चों को, मन्दिरों और मस्जिदों को, अस्पतालों, धर्मशालाओं को बमों की चोट से धराशायी होते देखा है। टूटे-गिरते विशाल भवनों से मानव कराह उठा है। दिगंत में उसकी कराह भर गई है। दिलवालों के दिल हिल गये हैं, पर सत्तावादियों की पेशानी पर बल नहीं पड़ा है। फिर भी वह कराह बेकार नहीं गई है। जमीन के इस कोने से उस कोने तक लोगों ने संकल्प किये हैं कि हिरोशिमा और नागासकी के मृत्युतांडव फिर न होंगे।

पर आज जो आपको लिखने बैठा, वह शान्ति सम्मेलन या उसके युद्ध विरोधी प्रचार से सम्बन्ध नहीं रखता। उससे रखता है जो आपका जीवन है, कर्मठता का इष्ट है। आज मैंने चीनी न्यायालय में प्रस्तुत एक अभियोग पर विचार होते देखा और उससे इतना प्रभावित हुआ कि आपको लिखे बगैर न रह सका। वैसे याद आपकी इस मेरी चीन की मुसाफ़िरी में कई बार आई, और सोचा भी एकआध बार कि आपको लिखूँ, पर संकल्प आज ही पूरा कर सका। जब जो देखा उसे टाल सकना असम्भव हो गया। लिख इसलिए और रहा हूँ कि जानता हूँ कि इस न्याय सम्बन्धी घटना में भारतीय न्याय के अंशतः विधाता होने के

माले जितनी दिलचस्पी आपको होगी उतनी शायद अन्य किसी को न होगी।

प्रायः तीन सप्ताह से ऊपर हुए जब कान्तोन पहुँचते ही मैंने स्थानीय शान्ति समिति के कार्यकर्त्ताओं से मुकदमे की सुनवाई देखने का लोभ प्रकट किया था। तब उन्होंने मेरी उत्कंठा को जाग्रत रखते हुए कहा भी था कि चीन में अन्य देशों की भाँति मुकदमों की तालिका तो कुछ बनी नहीं रहती और न अदालत ही १० से ५ बजे तक रोज बैठा करती है। जब विचारार्थ अभियोग उपस्थित होता है, केवल तभी अदालत बैठती है, मुकदमे का फ़ैसला करती है और उठ जाती है। इसलिए आपके चीन में रहते अगर सम्भावना हुई तो निश्चित आपको खबर कर दी जायेगी। आज जब हम दोपहर का खाना खा ही रहे थे कि हमारे मेजबान को किसी ने फ़ोन किया कि हमें बतला दिया जाय कि अगर हमें मुकदमा सुनना है तो तलाक़ का एक मुकदमा अदालत में होने वाला है जो ३ से ५ तक तीसरे पहर सुना जायगा। मैंने तत्काल उसे सुनने की मंशा ज़ाहिर की और साथ के कई लोग मेरे साथ अदालत में जाने को उत्सुक हुए। कुछ लोग, जिन्हें इस दिशा में किसी तरह की दिलचस्पी नहीं थी, वे दूसरी ओर स्कूल-कारखाने चले गये और हम अदालत आ पहुँचे। उसी कार्रवाई का ब्योरा जैसा का तैसा नीचे देने का प्रयत्न करूँगा।

अदालत की इमारत पक्की पत्थर की थी, और ऊँचे मकानों से जुड़ी हुई। ख्याल था कि वहाँ भरपूर पहरा होगा और विशेष साधनों से लैस होकर हमें वहाँ जाना होगा, पर इस तरह का कोई इन्तज़ाम वहाँ दिखलाई न पड़ा और हम घुसते ऊपर चढ़ने ऐसे चले गये जैसे किसी दोस्त या रिश्तेदार के घर जा रहे हों। कहीं पहरे का नाम न था, महज़ एक आदमी ज़ीने के सिरे पर खड़ा दाखिल होने वालों को राह बताता जा रहा था। उसके पास कोई हरबा-हथियार न था, फ़कत नंगी उँगलियाँ ऊपर के दरवाज़े की ओर इशारा कर रही थीं। अपने देश में

जो हमें अपनी अदालतों का तजुर्बा है उससे हम अदालत या सरकारी इमारतों, दफ्तरों का बगैर हथियारबन्द संतरी के होना कयास में नहीं ला सकते। अदालत में घुसते तो हमारे ऊपर एक अजीब-सी दहशत छा जाती है। पर यहाँ उस दहशत का कहीं नाम तक न था और हम चुपचाप सीढ़ियाँ चढ़ उस बड़े हाल में दाखिल हो गये, जहाँ करीब दो सौ औरत-मर्द बेंचों पर चुपचाप बैठे मेजिस्ट्रेट की ओर एक टक देख रहे थे। मेजिस्ट्रेट प्रायः ३० के आसपास का युवा लगता था, गम्भीर और शान्त।

मुकदमा तलाक का था। एक व्यक्ति ने, जिसके पिता और भाई मौजूद थे, शादी की। उसकी बीबी जिन्दा थी और १२ साल की एक बच्ची। उस व्यक्ति ने बाद में एक दूसरी औरत को घर में बिठा लिया था, जो झगड़े का कारण बन गई थी। प्रकृत पत्नी ने पति के असभ्य व्यवहार के कारण विवाह-विच्छेद का प्रश्न उठाया था और वह अदालत से अपना हक मांग रही थी। मुकदमा चल रहा था, दर्शक तन्मयता से इजलास की तरफ देख रहे थे और उपेक्षिता पत्नी बीती स्थिति का बयान अदालत के सामने कर रही थी। इजलास लम्बे-चौड़े, ऊँचे चबूतरे पर लगा हुआ था। बीच में मेजिस्ट्रेट बैठा था। उसके बायें ओर नारी संस्था की एक प्रतिनिधि और दायें अदालत का क्लर्क जो लगातार बयान का नोट लिये जा रहा था। नारी अपना अभियोग अपने आप, बगैर वकील की सहायता के सुनाये जा रही थी और मेजिस्ट्रेट शान्त मन, चुपचाप सुने जा रहा था।

नारी की आवाज बुलन्द थी, हाल में गूंज रही थी। शुद्ध काँपती-सी वह आवाज जिसका अर्थ हम समझ नहीं पा रहे थे, पर जिसका गुस्सा लोगों की खामोशी और खुद की चुनौती भरी ध्वनि से प्रकट था। दर्शकों को बादामी रंग के छपे कागज बाँट दिये गये थे। हमें भी, जब हम वहाँ पहुँचे, वह कागज मिला, जिसमें अभियोग का खुलासा छपा हुआ था। हमारे दुभाषिये ने जल्दी से दो-चार मिनट में मुकदमे

का विषय हमें समझा दिया। अदालत में भी किसी प्रकार का पहरा न था। हाँ, साधारण वर्दी में एक चपरासी वहाँ जरूर खड़ा देखा।

बताया गया कि औरत कह रही है कि कोई १३-१४ साल हुए जब उसके पति के साथ उसका विवाह हुआ और तभी से न केवल उसका पति उस पर अनेक प्रकार के जुल्म करता रहा है, बल्कि उसको खिलाने-पहिनाने से भी एक जमाने से उसने हाथ खींच लिया है और कि अब उसका आकर्षण एक मात्र वह रखैल है जिससे उसके कई बच्चे है, पर जिससे उसका सम्बन्ध ग़ैर-कानूनी है। अदालत से उसकी प्रार्थना है कि पति के साथ उसका विवाह सम्बन्ध तोड़ दिया जाय जिससे वह अपना और अपनी बच्ची का इन्तज़ाम खुद कर सके। उसने अपने बदन पर पति की की हुई चोटों के दाग़ भी दिखाये जिन्हें पड़ोसी गवाहों और मुद्दई की बहन ने पहिचाना। गवाही लगातार गुज़रती गई। बेंच पर बैठे लोगों में से गवाह निकल कर मजिस्ट्रेट के सामने पास के कटघरे में जा खड़े होते और कह देते कि किस प्रकार उन्होंने पति को उस पत्नी को मारते देखा, किस प्रकार उसने उनके यहाँ पनाह ली और कैसे उन्होंने उसके घावों की मरहमपट्टी की। मेजिस्ट्रेट ने अभियुक्त की ओर देखा और अभियुक्त कठघरे में जा खड़ा हुआ। उसकी पत्नी बेंच पर जा बैठी।

पत्नी चीन की नई नारी के लबास में तो न थी, पर उसका चेहरा ज़रूर नई आज़ादी के सपने को व्यक्त कर रहा था। उसकी भवों में बल थे, नथने क्षोभ से अब तक फड़क रहे थे, चेहरा सुर्खी से तमतमा रहा था, निर्भीकता बदन की गम्भीरता को स्वर दे रही थी।

अभियुक्त ने कहा कि उसकी पत्नी की जिम्मेदारी उसके ऊपर न थी। क्योंकि १२-१४ वर्ष पहले उसकी इच्छा के विरुद्ध उसकी नाबालगी में उसके माता-पिता ने ज़बरदस्ती सामन्ती तौर पर उसके गले में यह ढोल बाँध दिया था, जिसे वह पिछले १२ साल से बजाता आ रहा था।

उसे उससे किसी प्रकार का प्रेम नहीं और उसकी पत्नी को किसी प्रकार की सहायता की आशा भी नहीं करनी चाहिये, यद्यपि समय-समय पर उसने उसकी सहायता की भी है। मारने की बात गलत है। अक्ल आते ही उसने दूसरी लड़की के साथ अपना प्रेम सम्बन्ध कायम किया, जिसका सबूत वे कई बच्चे हैं जो अदालत में हाज़िर हैं।

अभियुक्त के पिता ने तब अपनी गवाही दी। अपने बड़े लड़के की नालायकी का जिक्र किया और कहा कि सही उसके विवाह का कारण चीन के अन्य माता-पिताओं की भाँति वह खुद रहा है, पर हर्गिज़ उससे पति की ज़िम्मेदारी में किसी प्रकार की कमी नहीं होती, क्योंकि अपना अधिकार मान पति अपनी पत्नी को मारता-पीटता रहा है और बालिग होने के सालों बाद तक कभी उसने अपने विवाह के विरुद्ध विचार नहीं प्रगट किये। वह स्वयं उसकी पत्नी और बेटी का भरण-पोषण करता आया है। वह शर्मिन्दा है कि उसका लड़का इतना गैर-ज़िम्मेवार रहा और उसकी पुत्रवधू को इस प्रकार कष्ट सहने पड़े। गवाह और गुज़रे और अभियुक्त को अन्त में अपना दोष स्वीकार करना पड़ा।

पर अभियुक्त ने स्पष्टतः प्रगट कर दिया कि पत्नी की संभाल उसके बस की नहीं। विशेषतः जब उसे खुद अपनी रखैल और उसके बच्चों का इन्तज़ाम करना है। तलाक के पक्ष में उसने अपनी राय ज़ाहिर कर दी और मुकदमा समाप्त हो गया।

जज साहब, न्याय की समस्याओं, उलझनों की बात मैं विशेष नहीं जानता। उसका 'प्रोसीजर' तो मुझे और भी चक्कर में डाल दिया करता है। आप उसकी पेचीदगियाँ भली प्रकार जानते हैं, क्योंकि आपका सम्बन्ध वकील के नाते मुकदमों की पैरवी से भी रहा और अब हाईकोर्ट के जज की हैसियत से उनके फैसले से भी है। शायद इस प्रकार का न्याय आपको बच्चों के खेल-सा लगे, शायद बतैलापन-सा, पर अर्ज़ करूँगा कि आज के कानूनी जंगल में, जहाँ तक अपने देश के न्याय की प्रगति को जान पाया हूँ, अभियोग की छान-बीन और फैसले के बुनि-

यादी हकों से कहीं अधिक महत्व का उसका 'प्रोसीजर' हो गया है। मैं, आप जानते हैं, वकालत में दखल नहीं रखता, पर वकील के परिवार में जन्मा हूँ और मुझे अनेक बार इन्साफ के उसूलों को समीप से देखने का जब-तब मौका मिला है। मुमकिन है मेरी नज़र उन पर मुनासिब न पड़ी हो, मुमकिन है कई बार मन में धारणा ग़लत भी बैठ गई हो पर एकाध बातें उस सिलसिले में इतनी साफ हैं और उनकी तर्मीज़ और असर ने मन पर इतने घाव किये हैं कि उनको बग़ैर किसी डर के कहा जा सकता है। सालों मुकदमों की पैरवी, सालों फ़ैसले का रुक जाना, इन्साफ का निहायत कीमती हो जाना, खर्च के कारण कर्ज में डाल देना, हृदयहीन, स्वार्थपर वकीलों, अहलकारों और मुकदमे की राह अपना भाग पाने वालों की कृपा से इन्साफ़ निस्सन्देह अपने देश में अत्यन्त मँहगा पड़ जाता है, उसका उद्देश्य निरर्थक हो जाता है। चीन में जो देखा, उससे दो-एक बातें स्थापित हो गईं—कि मुकदमे के फ़ैसले में देर नहीं लगती; कि अदालत का दबदबा पैदा करने के लिए अस्त्रधारी सन्तरियों की ज़रूरत नहीं होती; झूठे गवाहों को प्रश्रय नहीं मिलता; मुकदमों को चलाने और उनको बराबर पेशी में दिलचस्पी रखने वाले वकीलों और अनगिनत अहलकारों का वहाँ सर्वथा अभाव है; मुकदमे के दलालों की तो कोई सम्भावना ही नहीं। ज़मीन का मसला तय हो जाने से मुकदमेबाज़ी की ज्यादातर बुनियाद चीन में मिट चुकी है। अधिकतर अभियोग सामाजिक हैं और उन्हें मैजिस्ट्रेट और जज सहृदयता से, सामाजिक रूप से, पड़ोसियों आदि की सहायता से, बड़ी आसानी से सुलझा लेते हैं।

मुझे जिस बात ने विशेष प्रभावित किया, वह थी मैजिस्ट्रेट की मानवता। लगा, जैसे वह इसी धरातल का आदमी है; जनता की ही ज़मीन का, और उसकी तत्परता निहायत इन्सानी लगी। याद है कि मुकदमे के आख़ीर में मैजिस्ट्रेट ने अभियुक्त के पिता को बुलाकर कहा—आपके लड़के की गैर-ज़िम्मेदारी साबित है। देश का कोई कानून आप

को मजबूर नहीं करता कि आप उसकी बीबी और बच्चों की परवरिश करें, पर ज़ाहिर है कि आपने अब तक अपने-आप उनकी देखभाल की है। क्या उम्मीद करूं कि आप उनकी देखभाल तब तक और करेंगे जब तक कि मुद्दई दूसरा पति न पा ले या खुद कहीं काम न करने लग जाय? बच्चे आपके पोते हैं और उनकी माँ आपकी पुत्रवधू। ऐसा सुझाने की हिम्मत इसलिए और करता हूँ कि सुना है कि आपके पास पोर्सलेन का कारख़ाना है।

पिता गद्गद् हो गया। उसने कहा—श्रीमन्, बच्चे मेरा खून हैं और इस अभागी औरत ने मेरे नालायक बेटे की जो ज्यादतियाँ बर्दाश्त की हैं, वह मेरे शरम की बात है। मुझे आपका सुझाव मंजूर है। मैं बाखुशी जहाँ तक बन पड़ेगा, उनकी हिफाज़त करूँगा।

इसी बीच उसका दूसरा बेटा दौड़कर अदालत के सामने आ गया और उसने कहा कि मुझे अपने पिता की अपने-आप मंजूर की हुई पाबन्दियाँ स्वीकार हैं, पर मैं कह देना चाहूँगा कि यह अधिकतर संभव होगा जब तक हमारा कारख़ाना चल रहा है। अगर उसमें किसी तरह की मन्दी आई तो यह जिम्मेदारी हमारे लिए भार बन जायेगी। अदालत ने इसे नोट कर लिया।

प्रियवर, ६ बजे तक होटल लौट आया था और चाहा कि मुकदमे की सारी कार्रवाई लिख डालूं, पर शंघाई की लुभावनी इमारतें अपनी ओर खींचने लगीं और उन्हें देखने निकल पड़ा। अब, जब किंगकांग के कमरे नींद में बेहोश हैं, जब वरक का खड़क जाना भी चौंका देता है, ख़त लिख रहा हूँ। और उसे बन्द भी कर रहा हूँ। आशा है आप स्वस्थ होंगे और मेरा यह ब्यौरा आपको सन्तुष्ट करेगा। स्नेह।

श्री चन्द्रभान अग्रवाल,
जस्टिस, इलाहाबाद हाईकोर्ट,
इलाहाबाद।

आपका ही
भगवतशरण

कान्तोन की राह में,
१६ अक्तूबर, १९५२

प्रिय अश्क,

अभी-अभी शंघाई छोड़ा है। हवा के पंख पर हूँ। डा० अलीम, मेरठ के एक वकील ब्रजराजकिशोर, जे. के. बैनर्जी और कुछ और साथी मेरे साथ हैं।

दिन संवर कर निकला है। हल्की धूप शंघाई के भवनों की चोटियों पर चमक रही है। शंघाई, लगता है, चीन का नहीं है, समुन्दर पार का है। उसका विगत वैभव आज अतीत की कब्र में सो रहा है। पर उसकी यादें बार-बार मन में घुमड़ रही हैं। यादें, जिनमें खूबसूरती है, पर उस खूबसूरती में बेहद घिनौनापन है। कुप्रिन के उपन्यास का अंग्रेजी अनुवाद, यामा द पिट, पढ़ा था। कितना सजीव था वह चित्रण, समाज का कितना नंगा भंडाफोड़। पर उसका नंगपन शंघाई के तब के सामाजिक जीवन का छोर तक नहीं छू सकता।

अमेरिका और यूरोप की धींगामस्ती, उनके पूंजियतियों के जशन, उनकी विलसिता की अठखेलियां यहीं होती थीं, इसी शंघाई में। उपन्यासों में राहगीरों की मुसाफिरी की कैफयतों में जो बयान लिखे हैं उनको कभी किशोरों की नजर से बुजुर्ग बचा लिया करते थे कि कहीं उस सामाजिक घिनौनेपन की गंध उन्हें न लग जाय। 'यामा द पिट' का विस्तार शंघाई की हरमोड़ पर तब था। कहते हैं कि हर पाँचवाँ मकान वेश्यालय था, हर पाँचवीं औरत वेश्या थी। चीन में हजारों-लाखों हरमों के बावजूद नगर-नगर में तवायफों के चकले बसे थे।

और चीन का पौरुष उनमें डूबता था। अफ़ीम के आयात का यह द्वार-समुद्र महाकेन्द्र था। अफीम का धुआं शंघाई के भवन कलशों को चूमता था, उसके जीवन के अंतराल में घुमड़ता था। हज़ारों की तादाद में औरत के पेशेवर दलाल जना को कीमत में अपना भाग पाते थे। देश की हज़ारों रूपसी ललनायें नित्य शंघाई में अपना शरीर बेचती थीं। उनके सौरभ पर मधुप—मंडराने वाला उनका ख़रीदार अपने आनन्द पर इतराता था। शंघाई की गलियों में चोरी और डकैती का दबदबा तो बना ही रहता था, वेश्यागीरी के फलस्वरूप हत्याओं की भी कुछ कमी न थी। चीन की राजनीति इस घिनौने जीवन की गज़ब की सहायक थी। यूरोप के अलबेले, अमेरिका के छैले, शंघाई के गृह-मन्दिरों में देवता की पूजा पाते थे। अमेरिका कोमितांग का एक मात्र सहायक था। उसके सैनिक उस शहर के नारीत्व पर शर्मनाक हल चलाते थे जैसे आज के जापान के नारीत्व पर चला रहे हैं। माओ की अद्भुत विजय है कि न केवल उसने उस राजनीति का अन्त कर दिया बल्कि नारी के उस आपद्ग्रस्त जीवन का भी, जिसका घटियापन विदेशी के धन का परिणाम था।

शंघाई में वेश्यावृत्ति आज बन्द हो गई है, जैसे चीन के और नगरों में भी। जहाँ अपने देश में चकलों को नगर से बाहर बसाने के प्रयत्न नगरपालिकायें कर रही हैं वहाँ चीनियों ने उस विषवृक्ष को आमूल उखाड़ फेंकने का सफल प्रयत्न किया है। कितना पुराना व्यवसाय यह रहा है, अश्क ? जहाँ तक इतिहासकार की मेधा जाती है, बाबुल की देवी मिलित्ता के मन्दिर के और परे, काल की काली गहराइयों में—कब से नहीं नारी की इस मजबूरी का इतिहास लिखा जा रहा है ? पर उसे आज के चीन ने आखिर उखाड़ फेंका। तथाकथित जनतांत्रिक देशों में बहस होती है—क्या वेश्यागिरी सहसा ख़त्म कर देना ख़तरनाक नहीं ? क्या मनोविज्ञान ऐसा करने की सलाह देता है ? क्या उस जीवन में पक जाने से नारी सामाजिक सदाचार में संकट नहीं उपस्थित कर देगी ? इस

प्रकार के अनन्त प्रश्न हमारे समाज-सेवी करते हैं, जैसे नारी का शरीर बेचना ही, उसका घृणित आत्म-समर्पण ही स्वाभाविक हो। आर्थिक परिस्थिति इस दिशा में किस हद तक जिम्मेवार है, सामाजिक कुरीतियाँ किस मात्रा तक चकलों की सहायक हैं, सामन्ती जीवन ने किस अंश तक उसे निबाहा है, यह क्या कहने की आवश्यकता होगी?

चीन की वेश्याएँ आज गौरवशाली मातायें हैं, लाजलब्ध वधुएँ हैं। तरुणों ने उन्हें अपने पौरुष की छाया दी है। आज वे खेतों पर हैं, कारखानों में हैं, स्कूलों में हैं, अस्पतालों में हैं, सेनाओं में हैं, देश और समाज की उन बेशुमार संस्थाओं में हैं, जिनके आधार पर चीन का न केवल उत्कर्ष निर्भर करता है, वरन् जिन पर उसके जीवन की आधारशिला रखी है।

उस शंघाई की निरन्तर आती याद के ऊपर वह नई याद भी हावी है जो चीन की आज की लहराती दुनिया की है। शंघाई के नए जीवन की कोपलें, नया उल्लास लिए फूट पड़ी हैं, नारीत्व और पौरुष। नया मूल्य खोजा है चीनियों ने और शंघाई आज उससे बाहर नहीं। जिन घृणित आवासों में आपानभूमि रची जाती थी, जहाँ विलास के घिनौने सोते फूटते थे, वहाँ आज नई जिन्दगी पेंग मार रही है। अस्पताल, सहयोग-संस्थायें, क्लब, स्नानघर अत्यन्त सुन्दर मकान उन मजदूरों के लिए सहसा उठ खड़े हुए हैं जो उस देश की जनता की सही इकाई हैं और जिन्होंने उसका पुनर्निर्माण अपने कंधों में एटलस की ताकत भर उठाया है।

उस शंघाई में, अश्क, तुम्हारे चातक जी, शुक्ला जी का घिनौना परिवार न मिलेगा, अनन्त-अनन्त हरीश, बेशुमार कुमुद उसके नये जीवन को संवार रहे हैं। ज़रा रुकना—फिर लिखूँगा, अभी तनिक देर बाद। जहाज़ की होस्टेस चाय की ट्रे लिए खड़ी है, ज़रा पीलूं। चीनी चाय का सौरभ है यह, लाल, हल्के लाल रंग की चाय का। जूही के फूलों से बसी सुरभित चाय चीन ही पैदा करता है। उसने सारे संसार को चाय दी, वह पेय जो आज संसार के धनियों का उल्लास है, ग़रीबों का

का एक मात्र पेय। पर स्वयं उसने अपने लिए वह राज छिपा रखा जो चीनी चाय का अपना है, फ़कत अपना। उसे पीता हूँ तो रग-रग में उसकी महक कुलांच लेने लगती है।

धीरे से होस्टेस ने कहा, अब हम कान्तोन पहुँचने ही वाले हैं। सो अब क्या लिखना। हवा की सर्दी कुछ नरम पड़ गई है। कान्तोन जिस सूबे में है उसमें हम कब के दाखिल हो चुके हैं। अब जहाज की गति कुछ धीमी भी हो चली है। आसमान में बादल एक नहीं, जिससे कान्तोन शहर की धुँधली रेखा अब साफ़ दीखने लगी है। शीघ्र जहाज नगर की बुर्जियों पर मँडराने लगेगा।

लिखना बन्द करता हूँ। शाम को फुरसत न मिलती—गाँवों में जाना है—रात में ही हांगकांग के लिए चल पड़ना है। विदा। स्नेह, कौशल्या जी को भी। गुड्डे को प्यार।

श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क',
५ खुसरो बाग रोड,
इलाहाबाद।

तुम्हारा
भगवतशरण

हाँगकाँग,
२० अक्तूबर, १९५२

प्रियवर,

दो-तीन दिन हुए हाँगकाँग लौटे। आज कलकत्ते के लिए चल पड़ूँगा, शायद शाम को। जहाजों के टायमटेबुल में कुछ परिवर्तन हो गया है। पैन-अमेरिकन का मेरा जहाज कहीं रुक गया है और फलतः मुझे भी अपने प्रोग्राम में परिवर्तन करना पड़ा है। जे. के. बैनर्जी मेरे साथ ही आए; उन्हें जापान जाना है, उन्हें भी जहाज की दिक्कतों के कारण कई दिन रुक जाना पड़ा है।

कान्तोन पहुँचते ही पता चला कि पीकिंग वाली ट्रेन जो हमारा असबाब लेकर कान्तोन आने वाली है, अभी पहुँची नहीं। मतलब कि हम शायद उस से न चल सकेंगे। तीसरे पहर एक गाँव जाना पड़ा। कई मील मोटरों में बैठकर। गाँव हिन्दुस्तान के गाँव की ही भाँति बसा था, पर नई सरकार के मुस्तैदी के कारण साफ़ सुथरा था। मक्खियाँ वहाँ भी न थीं। गाँव वालों ने हमारा स्वागत किया, अपनी स्थिति का बयान किया, नई सरकार के पहले और पीछे की आर्थिक स्थिति का ब्यौरा दिया। चाय पीकर हम एक बच्चों के स्कूल में गये और उनके उत्साह का प्रदर्शन देखा। फिर हम गाँव की गलियों से होते हुए लौटे। हम गलियों में स्वच्छन्द घूमते, हमें किसी ने रोका नहीं। घर के मालिक बूढ़े किसान ने जो कुछ घर में था, वह खाने को दिया और प्रसन्न हो बहुत-सी बातें कहने लगा। दुभाषिया हम पीछे छोड़ आये थे। कोई दौड़कर उसे बुला लाया। बूढ़ा अपनी उमंग में था, बोलता चला जा रहा था, बग़ैर

इसका ख्याल किये कि हम उसकी बात ज़रा नहीं समझ रहे हैं। उसका उत्साह, उसका औदार्य, उसकी प्रसन्नता असाधारण थी। उसके कहने का मतलब था कि एक ज़माना था जब ज़मीन उसकी न थी और वह खेत ज़मींदार से लेकर जोतता-बोता था। और अकाल! तब ज़मींदार की बरहमी से मजबूर होकर जब वह लगान न दे पाता तब उसे बेटे-बेटी तक गिरवी रख देने पड़े थे। बेटी के गिरवी रखे जाने का मतलब क्या है, बताना न होगा। पीकिंग, शंघाई और कान्तोन के चकले, जनरलों और ज़मींदारों के हरम, होटलों और बन्दरगाहों के आतिथ्य उसका उत्तर देंगे। बूढ़े की आवाज़ में असाधारण क्षोभ था, उसकी आँखों में लपकती ज्वाला थी, उसकी बूढ़ी नसों में नई स्फूर्ति उचक रही थी। उसने और कहा, निचोड़ में—कि हम जानते हैं, हमारा अन्न कहाँ से आता है, यानी हमारी ज़मीन से; हम जानते हैं कि यह आमदनी स्थायी है; और हम जानते हैं कि अभी यह केवल आरम्भ है। यह कहते-कहते बूढ़े की आँखों में नई सरकार के प्रति कृतज्ञता के आँसू भर आए। हम कान्तोन लौटे।

पीकिंग की ट्रेन हमारा असबाब लिए आ पहुँची थी। असबाब दूसरी गाड़ी में, जो हमें लेकर शुनचिंग जाने वाली थी, रखा जा चुका था और वह गाड़ी १२ बजे रात को छूटने वाली थी।

भोजन और विदाई के बाद हम गाड़ी में बैठे। सोने का निहायत अच्छा इन्तज़ाम था। यूरोप की गाड़ियों में जैसे 'स्लीपर' होते हैं, वैसे ही पर्दे पड़े हुए कमरे थे, जिनमें बर्थों पर सोने का इन्तज़ाम था। कंबल चादर, तकिये पड़े हुए थे। आराम से हम सोये और जो सुबह जगे तो शुनचिंग आ पहुँचा था। चाय ली और चीन की सरहद पार कर गये। सरहद जो नई और पुरानी दुनिया के बीच थी। हम ललचाई आँखों से देर तक सीमा पर खड़े रहे,जब तक कि अंग्रेज़ पासपोर्ट-निरीक्षक ने हमारे पासपोर्ट लौटा न दिए, देखते रहे; नई दुनिया का जादू हमारी आँखों में नाचता रहा। अभी हम सरहद पर ही खड़े थे और लगता था जैसे सपना

टूट गया हो और वह स्वप्न का देश अविश्वसनीय हो चला हो। और जब अपनी यह हालत हुई तो सोचने लगा, यशपाल, कि उन अपने देश-वालों का क्या कसूर जिनको चीन की नई बदली हालत की कहानी पर विश्वास न हो। याद है पण्डित सुन्दरलाल के वक्तव्यों पर लोगों को किस क़दर अविश्वास होता था, कैसे कुछ मक्खन के बने लोग नाक-भौं सिकोड़ते थे। हां, सचमुच वह दुनिया सर्वथा दूसरी है, एक नई ज़मीन निकल आई है। एक नया आसमान उसे अनन्त तारों से ढके हुए है। नए तारे, नए चांद-सूरज उसमें उगने-डूबने लगे हैं। एक नया क्षितिज उस दुनिया को घेरे हुए है। उसी उल्लासमय जगत के हमने दर्शन किए हैं, और अब नये पुराने की संधि पर खड़े हैं, बरबस नये की ओर पीठ किये पुराने की ओर आंखें लगाये।

हाँगकांग की ओर से हमारी गाड़ी खींचने वाला इंजिन आ गया था। सीमा के प्रतिबन्ध का प्रतीक लकड़ी का दरवाज़ा सहसा हट गया और हम अंग्रेजी सरकार की अमलदारी में दाखिल हो गये। साढे नौ बजे के करीब हम हांगकांग जा पहुँचे, कौलून होटल।

कौलून होटल अपना जाना हुआ था। चीन जाते समय वहीं ठहरे थे, फिर वहीं ठहरे। कमरे में डा० अलीम और मैं बदस्तूर एक साथ थे। जैसे ही उसमें दाखिल हो मैंने दरवाजा लगाया, डा० अलीम ने दरवाजे की ओर उंगली उठाकर कहा—वह पढ़ो। पढ़ा, किवाड़ की पीठ पर लिखा था—

"वेश्याओं से सावधान !
चोरों से सावधान !"

हम वेश्याओं, चोरों और भिखमंगों की दुनिया में लौट आए थे, उस दुनिया से जहां न वेश्यायें हैं, न चोर हैं, न भिखमंगे और न वहाँ मक्खियों की घिनौनी भिनभिनाहट है। पुरानी दुनिया की यह नई चोट थी। होटल की उस लिखावट ने जैसे चांटा मार कर हमें सावधान कर दिया कि हम उस जमीन पर हैं जहाँ के सामाजिक-आर्थिक जीवन की

प्रतीक वेश्यायें ह, चार और भिखमंगे हैं। हम अपने दिलों, अपनी जेबों पर हाथ रख सावधान हो गये। यह हांगकांग है, प्रशान्त महासागर के तट का राजा।

वांग साहब मिलने आये। भारत से उनका व्यापार चलता है। अत्यन्त शिष्ट हैं।

हमारे प्रति उनका बड़ा आग्रह है। लंच उन्होंने हमारे साथ ही कौलून होटल में किया, उनकी पत्नी भी थी, दो सुन्दर फूल से खिले बच्चे भी। पर बिल चुकाने का मेरा इसरार उन्होंने न माना, उसे खुद ही चुका दिया। दूसरे दिन डा०अलीम और मुझे लेकर कौलून के समुद्र तक की सैर के लिए हमारा वादा ले चले गए। शाम को दिवाली थी और सिन्धियों ने दिवाली का उत्सव मनाने का आयोजन कर रखा था। हांगकांग में सिंधियों की खासी संख्या है। वस्तुतः वे मध्यपूर्व के देशों से लेकर पच्छिम में जिब्राल्टर तक और पूरब में हांगकांग से लेकर फ़िलिपाइन, हवाई तक फैले हुए हैं। हवाई के प्रख्यात सिन्धी सौदागर वाटूमल अमेरिका के मान्य नागरिक हैं, जिनके धन का सद्व्यवहार अंशतः भारतीय विद्यार्थियों के वजीफे के रूप में हुआ है। सिन्धी पहिले भी हांगकांग में सैकड़ों की संख्या में थे और देश-विभाजन के बाद तो अनेक सिन्ध छोड़ सीधा हांगकांग की ओर जो चले आए तो उनकी संख्या आज वहाँ हज़ारों में है। सारा ढंग आयोजन का अंग्रेज़ी था। मर्द सूट में थे, स्त्रियां पंजाबी सिन्धी लिबास में, कुछ साड़ी में भी, अधिकतर बड़ी लड़कियाँ फ्राकों में।

होटल लौटा तो खासा अन्धेरा हो चुका था। कुछ ख़रीदारी करनी थी। बाज़ार जा पहुँचा। बाज़ार पहुँचना क्या था, कौलून होटल बाज़ार के बीच ही है। पीछे की सड़कों पर निकल पड़ा। चित्रा के लिए एक ड्रेसिंग गाउन ख़रीदा, घड़ी की कुछ रुपहली चेनें, एक बढ़िया बेंत की अटैची और बांस बेंत आदि की बनी कुछ आकर्षक नायाब चीजें। दाम की मत पूछिए। चौगुना करके बताते थे और चौथाई दाम पर बेचते

थे। ड्रेसिंग गाउन की कीमत पहले २०८ डालर बताये, बाद में ९५ डालर पर दिया। अगर घड़ी की चेनें पहले ले ली होतीं तो निश्चय लुट ही गया था। चेनों के दाम, एक-एक के, चार और छः डालर तक बताए थे, दिये एक-एक डालर में। हांगकाग का डालर १४ आने का होता है। चीन में चीज़ों के मूल्य अरबी अंकों में लिखे होते थे और उनका मोल किसी प्रकार कम-बेस नहीं हो सकता था, पर हांगकाग पुराने दुनिया के द्वार पर खड़ा उसके आचार के मूल्यों का जो सन्तरी था, तो मुमकिन न था कि पुराने मानों में किसी प्रकार का अंतर पड जाय। ठगी और जुना का रखवाला हांगकांग निःसदेह अनेक को बडा प्यारा है, असाधारण सम्मोहक। पर चीन ने हमारी मत मार ली थी, हांगकांग हमें न रुचा।

ज़रा रात बीते बीनू (जे. के. बैनर्जी) के साथ हांगकाग की ऊंचाइयों की ओर चल पड़ा। तारों के सहारे चलने वाली रेल या मोटर बस के डब्बे, तारों का जंगल पार करती खड़ी आसमान की ओर चढ़ गई। थोडी देर में हम चोटी पर थे। नीचे प्रकाश का समुद्र लहराता था। दूर तक बल्बों के छुटपुटे तारे बिखरते चले गए थे। वायुमण्डल नीरव शान्त था, समुद्र थरथराता-सा हल्का डोल रहा था, पर जैसे एक निशब्द कोलाहल वातावरण को दबाये दे रहा था। अभी गाड़ी से उतर कर एक ओर बढ़े ही थे कि जैसे झाड़ी से निकल किसी ने पूछा—"तफ़रीह चाहिए?" गोया कि तफरीह का सामान मुहैया था। कैसे न हो, हांगकांग की दुनिया और तफ़रीह न हो! हमने इन्कार किया, आगे बढ़े, फिर दूसरे निकले, उन्होंने भी तफ़रीह की बात पूछी। गरज़ कि सांस लेना कठिन हो गया, बड़ी देर तक उनसे उलझते-जूझते झल्लाकर लौट ही पड़े। प्रकृति का सुन्दर मस्तक जो उस चोटी पर झुरमुटों का केश फैलाए पड़ी है, कितना कमनीय होता अगर ये घिनौने दलाल उसे दूषित न कर देते।

दूसरे दिन वांग साहब पत्नी और बच्चों को लिए आए। साथ बूढ़ी

माँ भी थी। डा० अलीम और मैं उनके साथ चल पड़े। दूर समुन्दर के किनारे पहाड़ियों की छाया में चलते चले गए। नील अम्बर के नीचे नीले समुन्दर का, दम साधे समुन्दर का, वेलाहीन वैभव और उसके अंचल में रिद्ध हरी घास से ढकी भूमि और उस हरियाली को बीच से चीरती चली जाती साँप-सी काली सड़क। थोड़ी-थोड़ी दूर पर गाँव, नए पुराने चीनी अंग्रेजी किस्म के गाँव और थोड़ी-थोड़ी दूर पर आकर्षक लानों से सजे रेस्टोरेंट और होटल। आपान की चहल पहल, चाय की चुस्कियां, कामिनियों की चुहल, छैलों की छेड़छाड़, अकेले होटलों में समूचे हांगकांग का उघड़ा जीवन।

चलते चले गए, प्रायः २० मील दूर। वहाँ एक मन्दिर था, चीनी बौद्ध मन्दिर। दर्शन किए, लंच किया, वांग साहब के उस समुद्रवर्ती 'विला' में लौटे। फल और बिस्कुट रखे थे, चाय आई, पी, और चल पड़े।

वांग साहब की मोटर सड़क पर रेंगती चली। मशहूर होटलों के सामने ठहरती, जब हम उतरकर ज़रा घूम लेते, ज़रा दम ले लेते, ज़रा सुन्दर शक्लों के ख़ुमारी भरे चेहरों पर एक नजर डाल लेते। निःसन्देह दाहिने बाँयें के दृश्य अभिराम ने, इटालियन 'रिवियेर' की याद बर-बस हो आती। होटल पहुँचे तो शाम हो आई थी। डिनर और शैया।

आज सुबह जो उठा तो एकआध पत्र-रिपोर्टर आये, उनसे बात की और स्टीमर से उस पर हांगकांग के बाजार में जा पहुँचा। कौलून होटल कौलून में है न—हांगकांग के इस पार चीनी ज़मीन पर, जहाँ से हांग-कांग १० मिनट में जहाज पहुँच जाते हैं। कुछ चीनी बर्तन ख़रीदे, थरमस वगैरह, और लौट पड़ा। साथ एक मित्र थे, वांग साहब के दिये हुए चीनी मित्र जो सामान लेकर मेरे होटल चले गये और मैं देर तक कौलून वाले तट पर घूमता रहा। दोपहर के समय लोग तफ़रीह के लिये तट पर नहीं आते, मेरी तरह के अजनबी ही घूमा करते हैं। फिर भी लोग थे वहाँ, निठल्ले लोग, जिन्हें शायद काम नहीं पर लकदक बने रहने के लिये जिनके पास काफ़ी पैसा होता है। वह पैसा कहाँ से आता

है, वही जानें। पर लोग जानते हैं, क्योंकि किसी ने बताया था कि जब-तक अमरीकी माँझी हांगकांग में अपनी छावनी बनाये हुए हैं, जब तक कोरिया का युद्ध चल रहा है, जब तक फारमोसा का अचलगढ़ क़ायम है, इन्हें पैसे की कमी नहीं हुई। इनका रोजगार चलता रहेगा और उन अमरीकी नाविकों की आँखें अब दक्खिन पूरब की तरफ़ भी लगी हैं—हिन्द-चीन की ओर, वियतनाम की ओर, लाओ की ओर, बर्मा की ओर।

आज शाम को, ख़बर मिली है, जहाज रवाना होगा। मित्रों के साथ फिर एक बार शाम को जब ख़बर मिली कि जहाज रात में जायगा फिर हांगकांग पहुँचा। दुकानों में, सड़कों पर, निरुद्देश्य फिरते रहे। फिर अनायास पैन अमेरिकन के हांगकांग वाले दफ़्तर में जा घुसे। ख़बर मिली कि कौलून का दफ़्तर आध घंटे से फोन की घंटी हमारे लिये निरन्तर बजाता रहा है, कि जहाज सहसा आ पहुँचा है, और हमें अगर जहाज पकड़ना है तो झट भागना होगा। भागे। होटल पहुँचे। सामान लिमुज़ीन में रख दिया गया था। हमारी राह देखी जा रही थी। मिसेज़ चट्टोपाध्याय और मिसेज बैनर्जी हमारे लिये बेचैन थीं। लिमुज़ीन दौड़ पड़ी, कौलून के एयरोड्रोम की ओर।

यशपाल,
हिवेटरोड,
लखनऊ।

आपका
भगवतशरण

कलकत्ता,

२३ अक्तूबर, १६५२

प्रिय अम्नी,

चीन से लौट आया हूँ। जहाज से उतरते ही न लिख सका। और जब से आया हूँ लगातार व्याख्यानों का तांता लगा हुआ है। धनी और ग़रीब उस जादू के देश के कैफ़ियत सहानुभूति से सुनते हैं। खूब सुनते हैं। कहना भी बहुत है। पर कहना वही है जो उनके गले से उतर सके, क्योंकि, जानती हो, सच्चाई जादू से कहीं ज्यादा अविश्वसनीय हो उठती है जब-तब, और चाहे हम पुराणों की कल्पनायें हजम कर लें, सच्चाई को गले से नहीं उतार पाते।

जाते हुए तुम्हें लिखा था, लौटकर फिर लिख रहा हूँ। जमीन का विस्तार वही है, आसमान का वही चँदोवा है, हवा भी वही है, धूप-चाँदनी भी वही, पर दुनिया बदल गई है। यह दूसरी दुनिया है जहाँ आया हूँ, वह दूसरी थी जिसे छोड़ा है। आदमी वहाँ अपने सपने सही कर रहे हैं, यहाँ आज भी वे गहरी नींद में हैं। पुरानी संस्कृति, गुंजलक भरते, अजदहे की कुंडलियों में लिपटी उसकी काया, उठते-गिरते साम्राज्य, विदेशियों के दाँव-पेंच, कोमिनतांग की बुज़दिली, मोक्ष, आज़ादी, गिरती-पड़ती बेरौनक दुनिया के नथनों में नये प्राण—वह पीला दैत्य, जिसे नैपोलियन ने कहा था, न छेड़ो, नहीं वह उठ बैठेगा, दिगन्त में छा जायगा, फिर सम्हाले न सम्हलेगा। पीला दैत्य उठ खड़ा हुआ है, पृथ्वी पर पैर टिकाये, माथे से आसमान टेके।

और हमारी मस्ती ऐसी कि कानों पर जूँ न रेंगती। कलकत्ते के

अखबारों में झूठ का एक तूफ़ान आ गया है। कोशिश है कि कैसे उस प्रकाश को ढक दें जिसकी किरणें हमारे अन्धकार को भेदने लगी हैं, कि किस तरह उसे झूठ कर दें जो चीन के ज़र्रे-ज़र्रे को रोशन कर रहा है। उत्साह की इतनी हीनता, अपनी अकर्मण्यता में इतना विश्वास, वर्तमान स्थिति को बनाए रखने का इतना प्रयत्न, जितना यहाँ देखा उतना और कहीं नहीं। उत्साह भंग हो जाता है, जीवन हार जाता है, प्रमाद हमारी नस-नस में उतर आता है। क्या होगा इस देश का, इसकी सीधी जनता का, इसके बेमानी घमंड का ?

ग्रेट ब्रिटेन का शिकंजा अभी-अभी इस देश के ऊपर से हटा है और अमेरिका का प्रोजेक्ट के बहाने जो कर्ज का सिलसिला शुरू हुआ है उसने संसार के सारे देशों को नथ लिया है, कुछ अजब नहीं कि हिन्दुस्तान भी उसमें नथ जाय। पंडित नेहरू ने बहुधा उसकी डोरी या बन्धन से इन्कार किया है, पर क्या यह बताना होगा कि कोई बटुआ बगैर डोरी के नहीं होता ? और उस स्थिति की शक्ति भी भारतीय राजनीति के विधाता के व्यक्तित्व पर निर्भर करेगी। पंडित नेहरू का व्यक्तित्व बड़ा है, ईमानदार है, शक्तिम है, शान्तिप्रिय है; पर अगर किसी तरह शासन की रज्जु उनके सहकारियों के हाथ में आई तो फिर भगवान भला करे इस देश का।

मैं 'कम्युनिटी प्रोजेक्ट' को स्वयं बुरा नही मानता। किसी-न-किसी रूप में हमें देश में इस प्रकार की ग्राम-सुधार-योजना सिद्ध करनी ही थी, पर उसमें जो विदेशी शोषण की जिह्वा लपलपा रही है, वह उस नितान्त पावन योजना को दूषित कर देती है। चाहिए यह था कि अपने परिमित साधनों से हम साहस के कदम उठाते तथा और साधनों के बल पर उस योजना को पूरा करते। वस्तुतः उसी तप और साधना से, साहस और श्रम से चीन की योजनायें कार्यान्वित की जा रही हैं। जिस देश में सड़कें नहीं हैं, हवाई जहाज की लाइनें नहीं हैं, रेलें इनी-गिनी हैं, वहाँ आज धड़ाके के साथ एक के बाद एक आर्थिक योजनायें,

सामाजिक स्कीमें स्वरूप धारण कर रही है, और उनकी परिणति की राह में पैसे की कमी का बहाना सामने नहीं आता। पंडित नेहरू के समान कर्मठ, ईमानदार, देशप्रेमी नेता होने का सौभाग्य कम देशों को है, पर साहस और ओछे सहकारियों तथा स्वार्थपर पूंजीपतियों का मुखापेक्षी होना किस कदर आवश्यक साधों को अर्थहीन कर सकता है इसका प्रमाण भी उसी महान् व्यक्तित्व की आंशिक असफलता में है।

अपने देश की नीति तटस्थता की सही रही, यद्यपि तटस्थ रहना असम्भव हो जाया करता है। अपनी वैदेशिक नीति सर्वथा सफल रही है। उसका शान्तिप्रिय युद्धविरोधी रुख़ सर्वत्र सराहा गया है, बावजूद इसके कि अमरीकी सत्ता ने उसे बराबर 'सिटिंग आन दी फ़ेन्स' कहा है। वस्तुतः जिस प्रकार अमरीकी वैदेशिक नीति चलाई जा रही है, जाहिर है उससे कि आने वाली राजनीति में सर्वथा तटस्थ रहने वाला ईमानदार राष्ट्र उत्तरोत्तर अपनी ईमानदारी और स्वतन्त्रता की रक्षा करता हुआ अमेरिका-विरोधी होता जायगा। और यह उसके बस की बात न होगी। नैतिकता और अन्तर्राष्ट्रीय ईमानदारी के विरुद्ध जो अमेरिका ने दूसरों की जमीन पर खड़े होकर उनके घरेलू मामलों में हस्तक्षेप करना शुरू किया है, उससे दूसरा कुछ संभव भी नहीं। राष्ट्रों की शान्तिप्रियता की परख बस एक है—कौन किसकी जमीन पर खड़ा है ? जो अपनी भौगोलिक-राजनैतिक सीमा से आज बाहर है वही जंगबाज़ है, उसे अपनी सीमा के भीतर लौटना होगा और प्रत्येक ईमानदार राष्ट्र का यह कर्त्तव्य होगा कि उसे पीछे लौटाने में वह मदद करेगा। भारत इस दिशा में कार्यशील है, यह सन्तोष की बात है।

अम्नो, पत्र समाप्त करता हूँ, शीघ्र उधर आने वाला हूं, पर इधर का प्रोग्राम पूरा करके ही आ सकूंगा। प्रोग्राम ख़ासा पेचीदा है, लिखने और बोलने का, पर शान्ति की रक्षा के प्रति अपना यथाकिंचित् योग तो देना ही होगा। मुनासिब तो यह होता—कि समुन्दर, पहाड़ और जंगल लांघ आने के बाद कुछ आराम करता, पर आराम का जीवन

आज के ईमानदार व्यक्ति का जीवन नहीं है। फिर जो राह में देखा है, देख-सुनकर अटकल लगाया है, मन पर उसकी छाप गहरी पड़ी है। वह कार्य की लगन में बाधक होगा। चीन के ऊपर संगीनें उठी हुई हैं, कोरिया की हवा में शोले लपक रहे हैं, फ़ारमोसा के सँपेरे दाँत जो टूट गये हैं उनसे ज़हर बराबर बहता जा रहा है। हिन्द चीन, वियतनाम और लाओ की ज़मीन देशप्रेमियों के रक्त से भीगी है। उसके पहाड़ों की कन्दराओं में आज़ादी की आवाज़ गूँज रही है। बलिदानों का इतिहास आसमान अपने शून्य में लिखता जा रहा है। और इन सबके ऊपर बूढ़े चीन की नई जवानी का आलम उठता आ रहा है। उसकी कहानी, उन सबकी कहानी, कहनी होगी।

तुम्हारी याद इधर ख़ासी आई है, और अपने उस नन्हे रवि की, बढ़ते बच्चे की, विशेषकर इसलिये कि दुनिया की हवा में आज जंग-बाज़ी की बू-बास है जिसका अन्त करने के लिये हम सबको प्रयत्न करना होगा। और आज उसी प्रयत्न के निमित्त शान्ति की शपथ लेकर तुम सबको याद करता हूँ। यह पत्र बन्द करता हूँ। अमित स्नेह।

श्रीमती देवकी उपाध्याय,
प्रिंसिपल,
बिड़ला कालेज,
पिलानी (राजस्थान)

तुम्हारा
भगवत